वनस्पति वाणी

वर्ष 13 | सितम्बर 2003 | अंक 12

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पुर्वानुमति के बिना पुनप्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

डा० एम संजप्पा	:	संरक्षक
डा० हर्ष चौधरी	:	सम्पादक
नवीन चौधरी	:	सहायक सम्पादक

वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किए हैं।

मुखपृष्ठ का चित्र :निफोफिया यूवेरिया (लिलिएसी) ''टॉर्च लिली''

विषय सूची

1.	पावन उपवन (सेक्रेड ग्रोव)	: हर्ष चौधरी	1
2.	भारत की वानस्पतिक विविधता का संरक्षण	: अनीस अहमद अन्सारी	5
3.	अरुणाचल प्रदेश की जन जातियों द्वारा वनस्पति विविधताओं का उपयोग	: एस. एल. गुप्त	7
4.	पूर्वोत्तर राज्य का एक महत्वपूर्ण आर्किड : एरीडिस	: एस. एल. गुप्त	9
5.	पर्यावरण में विदेशी पौधों का योगदान	: दया शंकर पाण्डेय	10
6.	स्त्री रोगों की चिकित्सा में अशोक वृक्ष	: महेश कोठारी एवं दिनेश शिरोडकर	13
7.	पुष्पगुच्छ की वनस्पतियाँ	: महेश कोठारी और पी. सत्यनारायण राव	15
8.	समुद्री शैवाल की उपयोगिता	: आर के गुप्ता	21
9.	पर्यावरण	: आर. के गुप्ता एवं एस. एस. महापात्रा	24
10.	नन्दा देवी राज जात पद यात्रा - २००० (धार्मिक एवं वानस्पतिक दृष्टिकोण)	: हरीश सिंह 'भुजवान'	26
11.	मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान में वानस्पतिक सर्वेक्षण एक रोमांचकारी अनुभव	: दिनेश कुमार अग्रवाल एवं दिपान्वीता बनीक	32
12.	वन, वनवासी एवं वनसंरक्षण	: विनोद मैना	36
13.	टेरिडियम एक्यूलाइनम (ब्रेकन) के विविध उपयोग	: भूपेन्द्र खोलिया	39
14.	गुलाब : जितना सुन्दर उतना उपयोगी	: छवि घरा	42
15.	पराबैंगनी विकिरण से वनस्पति जात पर बढ़ता हुआ खतरा !	: कुमार अम्बरीष	44
16.	गोरुमारा राष्ट्रीय उद्यान	: लोपामुद्रा मोहन्ति	47
17.	'चन्दन – एक अमूल्य वनस्पति'	: कु.रुपाली प्रशांत कुलकर्णी	51
18.	भारतीय कृषि विज्ञान	: नवीन चौधरी	53
19.	'पर्यावरण समाचार'	: संजीव कुमार	55
20.	वृक्ष-एक सच्चा जीवन साथी	: मानस रंजन देवता	58
21.	वृक्ष ही जीवन	: लोपामुद्रा मोहन्ति	59
22.	ग्रेट निकोबार की आदिम जनजाति शोंपेन एवं उनका वानस्पतिक ज्ञान	: मार्शल तिग्गा, पी. जी. दिवाकर एवं कु. जे. जयन्ती	60

पावन उपवन (सेक्रेड ग्रोव)

हर्ष चौधरी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

''ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि अपनी सभी रचनाओं के उपभोग / लाभ के लिये की है। अतः प्रत्येक जीव को इस तंत्र का एक भागीदार होकर अन्य जीवों के साथ निकट सम्बंध बनाये रखते हुये प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करना सीखना चाहिये। किसी भी जीव का दूसरे जीवों के अधिकारों का अतिक्रमण करने की छूट नहीं है।''

ईशावाश्योपनिषद

हमारे देश में प्रकृति के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना सदियों से चली आरही है। जंगलों, पेड़ों, नदियों, तालाबों, पहाड़ों, पशु पक्षियों आदि की पूजा करने की प्रथा हमारे समाज में पुरातन काल से प्रचलित है। अहिंसा और शाकाहारी भोजन, जंगली जानवरों व पेड़-पौधों का विशिष्ट मौसम, लिंग विशेष व आयु में वर्जित उपयोग आदि नियम देखने व सुनने में तो अति साधारण लगते हैं किन्तु यह सभी प्रकृति संरक्षण के अत्यंत प्रभावी तरीके हैं जो हमारे पूर्वजों ने आदिकाल से अपनाये हैं और आज भी उनका महत्व कम नहीं हुआ है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध व जैन धर्म भी जो इस देश से आरंभ और प्रचलित हुये है उनमें भी प्रकृति एवं सभी जीवित वस्तुओं से प्रेम करना व उनका संरक्षण करने की शिक्षा दी गई है।

भारतीय दर्शनशास्त्र, संस्कृति एवं लोक कलाओं में परिस्थिति विज्ञान का विशेष प्रभाव देखने को मिलता है। यहाँ की पारिस्थितिक परम्परायें जनमानस की प्रकृति के प्रति श्रद्धा और आस्था को दर्शाती है जैसे–

पावन उपवन – वन का एक छोटा अथवा बड़ा भाग जो किसी देवी अथवा देवता का निवास स्थान होने के विश्वास के कारण संरक्षित किया जाता है।

पावन वृक्ष –ऐसे वृक्ष जो अपनी समाजिक-आर्थिक भूमिका अथवा किसी देवी-देवता का निवास समझे जाने के फलस्वरूप पूज्य व संरक्षित किये जाते है।

पावन/पवित्र नदियाँ – लगभग सभी भारतीय नदियों को देवी का रूप माना जाता है (ब्रम्हपुत्र, दामोदर, रूपनारायण,अजय के अतिरिक्त)।

पावन तलाब / जलाशय – प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित तलाब, झीलें जो किसी मंदिर अथवा धार्मिक स्थल, देवी देवताओं से जुड़ी हो।

पावन पर्वत / पहाड़ – प्रायः सभी पर्वतों को देवी देवताओं का निवास स्थान माना जाता है और ऐसे

अनेक स्थानों पर पुण्य तीर्थस्थल मी स्थापित हैं।

पावन पशु-पक्षी – ऐसे पशु-पक्षी जो समाज में आर्थिक दृष्टि से उपयोगी हों अथवा किसी देवी-देवता के वाहन के रूप में जाने जाते हों।

पावन क्षेत्र – तीर्थ स्थलों, मन्दिरों के आसपास का क्षेत्र भी पावन स्थान के रूप में पूज्य हैं।

उपरोक्त सभी की किसी न किसी रूप में पूजा अर्चना इनके संरक्षण में भी सहायक हैं।

पावन उपवनों की स्थापना भी इन्हीं धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं की देने हैं। ऐसे उपवन किसी देवी अथवा देवता का निवास मानते हुये स्थापित एवं संरक्षित किये जाते हैं। भारतवर्ष में पावन उपवन हिमालय से लेकर केरल तक फैले हुये हैं। इन्हें दार्जलिंग पहाड़ियों में 'देवराली' मेघालय में 'लकयनटाँग', 'माँफलाँग'; मध्य भारत में 'जाँकोर'; संथाल जनजाति क्षेत्र में 'जाहेर'; बिहार व मध्यप्रदेश में 'सरनास'; राजस्थान में 'ओरान'; महाराष्ट्र में 'दियोरेस' या 'दियोरानिस'; कर्नाटक में 'देवराकाड' या 'देवरावना' या 'सिध्रावना'; तमिलनाडु में 'कोइवलकाडू' या 'काव' और केरल में 'सर्पकाव' या 'काव' आदि नामों से जाने जाते हैं। भारत में अबतक 5700 पावन उपवन अभिलिखित किये जा चुके हैं। एक अनुमान के अनुसार पूरे देश का यदि गहन सर्वेक्षण किया जाय तो शायद 1,00,000 से भी अधिक पावन उपवनों की जानकारी मिल सकती है। इन उपवनो का क्षेत्र कुछ वर्ग मीटर से लेकर 100 हेक्टेयर या उससे अधिक हो सकता है। हमारे देश में सबसे अधिक पावन उपवन केरल राज्य में स्थित हैं। अबतक किये गये सर्वेक्षणों के आधार पर केरल के कसारगोड जिले में 71, कुन्नुर में 54, थिरूवनंतपुरम में 43, कोजीकोड में 23 पावन उपवन अभिलिखित किये गये हैं। इतना ही नहीं वनस्पति विविधता की दृष्टि से भी केरल में पाये जाने वाले पावन उपवन अति समृध्द है। ऐसा देखा गया है कि इन उपवनों मे पेड़ पौधों की जातीय विविधता आसपास के क्षेत्र के वनों की तुलना में कहीं अधिक होती है।

केरल के 364 उपवनों में जिनका क्षेत्रफल 1.5 वर्ग किलोमीटर है, आवृत बीजी पेड़-पौधों की लगभग 720 जातियाँ अभिलिखित की गई हैं जो 126 कुलों के 472 वंशो का प्रतिनिधित्व करती हैं। जबकि मेघालय स्थित उपवनों से पेड़-पौधों के 131 कुलों के 340 वंशो से संम्बधित 514 जातियाँ दर्ज की गई हैं। इन उपवनों से 50 से अधिक दुर्लभ और संकटग्रस्त पेड़-पौधों की ऐसी जातियाँ मिली हैं जो केवल इन्हीं उपवनों में सीमित रह गई है। राजस्थान के सीरवाला गाँव में स्थित पावन उपवनों में, जिनका विस्तार लगभग 83 हेक्टेयर है इस क्षेत्र में पाई जाने वाली 59 पेड़-पौधों की जातियों में से 31 जातियाँ यहाँ उपलब्ध हैं।

आंध्रप्रदेश में लगभग 800 उपवन अभिलेखित किये गये हैं। इस प्रदेश के अनंतपुर जिले के कादिरी नामक स्थान के निकट एक विशाल वट वृक्ष है। कहा जाता है थिम्मामा मारीमन नामक गृहिणी ने अपने आपको इस वट वृक्ष में परिवर्तित कर लिया

जिसपर वह निवास करती हैं। इस निरंतर बढ़ते वट वृक्ष के लिये यहाँ के निवसियों ने इसके आसपास की जमीनें दान कर दी हैं। आज वह विश्व का सबसे विशाल वट वृक्ष है जो लगभग 4 एकड़ में फैला हुआ है। आंध्रप्रदेश के ही चिन्तूर जिले में लगभग 133 पावन उपवन उल्लेखित किये गये हैं जिनमें से अनेक तिरूपति जिले में स्थित हैं। इन उपवनों में दुर्लभ एवं स्थानिक पेड़ पौधों की अनेकों जातियाँ पाई जाती हैं।

पावन उपवनों पर अबतक किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि इन उपवनों में बड़ी संख्या में पेड़-पौधों की संकटग्रस्त, दुर्लभ एवं स्थानिक जातियाँ संरक्षित हैं। उदाहरण के लिये केरल के पावन उपवनों में पाई जाने वाली 721 जातियों में से 154 जातियाँ केवल पश्चिमी घाट क्षेत्र में सीमित हैं और इनमे से 33% वृक्ष की जातियाँ है। उत्तर कन्नड जिले के कल्लाबी स्थित पावन उपवन में 33% जातियाँ स्थानिक हैं जबकि आसपड़ोस के द्वितीयक क्षेणी के वनों में केवल 15% स्थानिक जातियाँ ही मिलती हैं। कुस्टेलेरिया केरालेंसिस नामक आरोही लता केरल के पावन उपवनों के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान से अबतक अभिलेखित नहीं की जा सकी है।

पावन उपवनों मे पुष्पी पादपों के अतिरिक्त अपुष्पी पादपीं जैसे पर्णांग, कवक, शैक (लाईकेन) आदि की जातियों की प्रचुर विविधता भी देखने को मिलती है। वनस्पतियाँ ही नहीं, पशु-पक्षियों की भी अनेकों दुर्लभ, संकटग्रस्त एवं स्थानिक जातियाँ इन पावन उपवनों में आश्रय और संरक्षण पाती हैं। जैसे सिदापुर तालुक (कर्नाटक) के कटलेकन पावन उपवन में संकटग्रस्त लाँयन टेल्ड मेकाक; थावड़ीशेरी काव (केरल) में नीलगिरि लंगूर–जो एक संकटग्रस्त जाति है। उत्तर केरल के अनेक पावन उपवनों में सैकड़ों की संख्या में सफेद कछुये संरक्षित हैं जिनके देखभाल व भरण-पोषण स्थानीय निवासी करते हैं। व्हाईट बेलीड सी ईगल नामक दुर्लभ पक्षी केरल के कुछ पावन उपवनों में ही देखा गया है।

पावन उपवन जैवविविधता संरक्षण के अतिरिक्त अनेकों परिस्थितिकी क्रियांयें भी संम्पन्न करते हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मेंपरिस्थितिक तंत्र के रख रखावमें सहायक हैं। इसके अतिरिक्त यह स्थानीय वनस्पति जात एवं प्राणि जात को भी प्रभावित करते हैं। समृद्ध जैवविविधता के कारण पावन उपवनों को ''जीन बैंक'' की संज्ञा भी दी जाती है जहाँ स्वस्थाने जनन संसाधन संरक्षित हैं।

उपरोक्त विवरण इस बात का स्पष्ट संकेत देते है कि ये उपवन किसी स्थान विशेष के परिस्थितिक तंत्र को संतुलित एवं स्वस्थ रखने व जैवविविधता संरक्षण में अहम भूमिका निभाते हैं परंतु खेद की बात है कि आज की तीव्रगति से बदलती हुई सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों, जमीन की विभिन्न उपयोगों के लिये बढ़ती हुई माँग के कारण ये उपवन संरक्षित नहीं हैं और इनमें अनेको का अस्तित्व संकटग्रस्त है। ट्रवनकोर और कोचीन में सन् 1920 तक लगभग 15,000 पावन उपवन अभिलेखित किये गये थे किन्तु हाल ही में किये गये सर्वेक्षणों से पता चला है कि यह संख्या घट

कर केवल 2000 रह गई है। इन उपवनों की निरंतर घटती हुई संख्या चिन्ता का विषय है और इस कमी के मुख्य कारण हैं–

जनसंख्या वृद्धि के कारण जमीन की निरंतर बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिये पावन उपवनों पर बढ़ता दबाव क्योंकि यह अधिकांशतः गावों अथवा आबादी वाले क्षेत्रों से जुड़े होते हैं।

–पावन उपवनो से जुड़ी धार्मिक आस्थाओं के प्रति लोगों के विश्वास में निरंतर कमी।

–पावन उपवनों में किसी प्रकार के समाजिक अथवा भौतिक रोध के न होने के कारण पशुओं को चराना, ईंधन के लिये लकड़ी एकत्र करना।

– खरपतवारों की अनियंत्रित वृद्धि।

पावन उपवन सदृश्य देशी परिस्थितिक तंत्र जो बहुत से समाजों और परिवारों द्वारा स्थापित एवं नियंत्रित है यह संकेत देते हैं कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनो का भी इसी प्रकार प्रभावी नियंत्रण और संरक्षण कर सकते हैं। इस दिशा में निरंतर बढ़ते प्रयास जनमानस में प्रकृति और धर्म के बीच दृढ़ सम्बन्ध बना सकने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं जो इस पृथ्वी पर विचरण करने वाले सभी प्राणियों को यथोचित महत्व व संरक्षण प्रदान करने में सहायक होगा।

भारत की वानस्पतिक विविधता का संरक्षण

अनीस अहमद अन्सारी
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

भारत उपमहाद्वीप का क्षेत्रफल लगभग 32.9 करोड़ हेकटेयर है। यह क्षेत्र आदि काल से ही अपने वनस्पति तथा प्राणी सम्पदा की भिन्नता में धनी व सम्पन्न रहा है। वास्तव में भारतवर्ष उन बारह (12) उदभिद केन्द्रों में से एक है जिस में कृषि तथा अन्य उपयोगी पौधों की उत्पत्ति हुई। इन केन्द्रों का विवरण सर्व प्रथम प्रख्यात रूसी कृषि वनस्पतिज्ञ एन. आइ. वेक्लोव ने दूसरे महायुद्ध के दौरान दिया था। अनुमानतः भारतवर्ष में पौधों की 50,000 जातियां है जिसमें 17,000 पौधे पुष्पी पादप जगत के हैं यानि फूलों वाले पौधे। इन में से 5,000 से अधिक लगभग 30 प्रतिशत संकुचित विस्तार वाले केवल भारतवर्ष में ही पाए जाते हैं संसार में अन्यत्र कहीं नहीं। कृषि तथा अन्य आर्थिक महत्वकी लगभग 150 जंगली जातियां जो प्रकृति में अपने आप उगती हैं, में अच्छी तथा अधिक उपजाऊ किस्में विकसित करने तथा प्रतिरोधक गुण उत्पन्न करने की क्षमता पायी जाती है तथा ये जातियां एक विशेष वंशावली आधार बनाती हैं।

पौधों की बहुत सी जातियाँ विलुप्त हो गई हैं, कुछ विनाश के कगार तक पँहुच चुकी हैं तथा बहुत सी विरल व संकुचित हो गई हैं, विशेषकर हिमालय के क्षेत्रों में जहां अनेक कारणों से पारिस्थितिक तन्त्रबहुत कमजोर व छिन्न-भिन्न हो चुका है ऐसे पौधों को सुरक्षा प्रदान करना अति आवश्यक है जिस पर स्वयं मानव जगत का अस्तित्व व भविष्य आधारित है।

भारत की पादप संपत्ति की विविधता यहां की जलवायु, प्रकृति निवास, पारिस्थितिक स्थिति तथा समुद्र तल से ऊँचाई आदि से बढ़ जाती है। समशीतोष्ण पश्चिमी घाटों से लेकर राजस्थान के गर्म व तप्त रेगिस्तान, लद्दाख के ठण्डे रेगिस्तान तथा हिमालय की बर्फिली चोटियों से गर्म समुद्र तट आदि अनेक इसकी भिन्नता के उदाहरण हैं। प्राकृतिक निवास की अत्यन्त भिन्नता इस वास्तविकता से और भी स्पष्ट हो जाती है कि भारत उपमहाद्वीप में दस प्रकार के जैव-भौगोलिक क्षेत्र हैं तथा तीन मौलिक प्राकृतिक राज्य पाये जाते हैं।

भारतवर्ष में समय-समय पर वनों तथा प्राणियों की रक्षा के लिए कानून पास किए गए जिस से अनेक क्षेत्रों को संरक्षित घोषित किया गया तथा बहुत सी प्राणी तथा वनस्पति जातियों को सुरक्षा प्रदान की जा सकी। इन नियमों का उद्देश्य केवल सीमित जातियों को संरक्षण प्रदान करना तथा जलवायु को प्रदूषण से बचाना, पर्यावरण संरक्षण था। परन्तु इनका लक्ष्य विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में विभिन्न पारिस्थितिक

तन्त्रका सम्पूर्ण यथावस्था पूरे तौर पर सुरक्षा प्रदान करना कभी नहीं था ''संरक्षित जीव मण्डल'' का प्रारम्भिक उद्देश्य व लक्ष्य पूरे पारस्थितिक तन्त्रको सुरक्षा प्रदान करना है। संसार में इस समय 62 देशों में 226 सुरक्षित जीव मण्डल की स्थापना की गई है। भारत सरकार के पर्यावरण और वन मन्त्रालय द्वारा अबतक देश में १२ जीवमण्डल स्थापित किये जा चुके हैं और विभिन्न जैव-भौगोलिक प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक नये सुरक्षित जीव मण्डल केन्द्रस्थापित करने के लिये प्रस्तावित किए हैं।

वैज्ञानिकों का विचार है कि अगले 25 वर्षो में सभी जीवित जातियों का 20 प्रतिशत भाग लुप्त हो जाएगा इनमें से कुछ तो ऐसे होगे जिनके बारे में अभी तक हम जान भी न पाये होगे अर्थात इनके अस्तित्व की हम को खबर तक न होगी। इन जातियों में ऐसी विशेषता व गुण हो सकते हैं जिसके उपयोग से स्वयं मानव जाति के लाभ, आर्थिक व रोग निरोधक आदि क्षेत्रों में क्रान्ति आ सकती है। अतः इनका संरक्षण अति आवश्यक है। जैव-मण्डल ऐसा प्रयत्न है जिस से सम्पत्ति तन्त्रका मानव जाति द्वारा समुचित व नियंत्रित उपयोग इस ढंग से किया जा सके कि यह प्राकृतिक सम्पदा, हमेशा बनी रहे तथा सम्पूर्ण विनाश से सुरक्षित रहे। इस की परिभाषा इस प्रकार है ''भूमि या समद्र पर्यावरण का ऐसा क्षेत्र जो संसार के प्राकृतिक व भौगोलिक प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रत्येक बाधा रहित प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र का खुला क्षेत्र है जो अनुरूप व सहानुभूति पूर्वक भूमि उपयोग के क्षेत्रों से घिरा होजहां आदिवासी व अन्य लोग बसते हों''। अतः संरक्षित जीव मण्डल ऐसे कुण्ड का निर्माण करेगा जिस में प्राकृतिक तथा मनुष्य द्वारा निर्मित पारिस्थितिक तन्त्र शामिल होगा और पृथ्वी व उसके प्राकृतिक संसाधनों का लम्बे समय तक अधिकाधिक क्षेत्र का संरक्षण हो पायेगा साथ ही सम्पदा की सुरक्षा होगी। इस से कृषि तथा वन उत्पादन में उन्नति की जा सकेगी भविष्य के लिए एक तरह से बीमा तथा पर्यावरण को हानिकारक परिवर्तन सेभी बचाया जा सकेगा। साथ ही लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा होगी तथा शिक्षा प्रदान की जा सकेगी।

साधारण 'सुरक्षित क्षेत्र' सीमित व संकुचित तन्त्र है जबकि ''संरक्षित जीव मण्डल'' एक विशाल व खुला परितन्त्र है जिस में एक या खास जातियों की रक्षा नहीं वरन बहुत सी जातियों व पूरे जैविक तन्त्र व पर्यावरण तथा पृथ्वी के एक बड़े भाग की संरक्षण व सुरक्षा होगी।

अरुणाचल प्रदेश की जन जातियों द्वारा वनस्पति विविधताओं का उपयोग

एस. एल. गुप्त
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

उत्तरपूर्वी भारत का सबसे बड़ा राज्य अरूणाचल प्रदेश लगभग 83743 वर्ग किमी में फैला हुआ है। इसका 68621 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल अभी भी वनों से आच्छादित है जो भारतवर्ष में सबसे अधिक है। अपनी विविधताओं के लिए प्रसिद्ध अरूणाचल प्रदेश का अधिकांश भाग 'हाट स्पाट' के अंतर्गत है। विविधताएं न केवल वनस्पतियों में है वल्कि जनजातियों में भी है। परन्तु यही विविधताएं यहां की लगभग 25 जनजातियों एवं 105 उपजन जातियों द्वारा किसी न किसी रूपमें संरक्षित है चाहे वह संस्कृति हो, प्राचीन रीति रिवाज हो अथवा वनस्पति विविधताओं का उपयोग हो। 150 मीटर से हिमाच्छादित स्थानों तक पाई जाने वाली वनस्पति विविधताओं का कारण यहां पर मौजूद अधिक वर्षा, अधिक ताप एवं अधिक आर्द्रता है जिसके कारण कुल 20 प्रकार के वन यहां पाए जाते हैं।

अरूणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में प्रमुख हैं–अका, आदि, आपातानी, खाम्पति, बांगहस, बांगनिस, खाम्वा, हिलमिरी, मिजी मिश्मी, मोंपा, मेम्वा, निशी, नाक्टे, सोलंग, सेरदूकयेन, सिंग्पो, ताजिन, टेंग्सा एवं वांग्चू। ये जनजातियां दूर दराज के क्षेत्र में बहुलता हैं जहां पर ये अभी भी अपने परम्परागत तरीकों से अनेकों वनस्पतियों का खाद्य, औषधि एवं झोपड़ी बनाने में उपयोग करती हैं। प्रत्येक गाँव में वृद्धलोग बीमार व्यक्तियों का इलाज परम्परागत वनस्पतियों से करते हैं परन्तु उनका यह ज्ञान उचित ढंग से लिपिबद्ध न होने के कारण विलुप्त होती जा रही है। प्रस्तुत लेख में कुछ ऐसी ही वनस्पतियों का उल्लेख है–

1. औषधि : काप्टिस तीता, एकोरस कैलेमस, एकोनिटम फिटाक्स, पैनेक्स स्युडोजिन्सेंग, बर्वेरिस एरिस्टेटा, बर्जिनिया, सोलेनम खासिएनम, यूरेना लोबेटा एवं मूसा आदि।

2. काष्ठ (टिम्बर) : पाइनस वालिचियाना, टेकटोना ग्रेंडिस, डिप्टेरोकार्पस मैक्रोकार्पस, क्वर्कस रेकस। एवं टर्मिनेलिया मोरियोकार्पा आदि।

3. शाक : जैन्थोजाइलम आवसीफिलम, पालिगोनम पोसम्वा, चिनोपोडियम एल्वम, अमरेन्थस काडेटम, अ. विरिडिस, डिप्लेजियम एस्कुलेन्टम, स्पाडियास पिनेटा तथा सालेनम की कई प्रजातियां।

4.पेय पदार्थ : ओराइजा सदातइवा, जी मेज, इल्यूसाइन कोराकेन आदि।

5. मसाले : सिनामोमम तेमेला, एलियमसताईवम, मेन्था अर्वेन्सिस, जिंजीबर आफिसिनेली आदि।

6. भोजन के रूप में : ओराइजा सताइवा, जी मेज, सोलेनम, टयूबरोसम, ट्री फर्न,आईपोमिया बटाटा, साएथिया जिजेन्टिया आदि।

7. छत हेतु इम्पोरेटा सिर्लिन्ड्रका, सेकरम स्पांटिनियम, छेमेडा विलोसा, फिलोस्टेकिस असमिकस एवं लिविस्टोना जेन्किन्सियाना।

8. धार्मिक कार्य हेतु : कैलेमस की कई प्रजातियां, कवर्कस रेक्स, थूजा, पाइनस, अरुण्डिना ग्रेमिनी फोलिया, फिगोप्टरिस आदि।

9. सजावटी : कैलेमस इरेक्टस, कैलेमस टेनुइस, बम्बूसा तोल्डा, आर्किड, बम्बूसा पैलिडा, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिल्टोनाई आदि।

10. रंग : रुबिया कार्डिफोलिया, एकेसिया कैटेचू, एरेका कैटेचू, इक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा आदि।

11. ईंधन : बांस की प्रजातियां, लम्बे घास वाले पौधे एवं सभी सूखे पौधे।

12. चारा : बांस, बाउहिनिया पर्पूरिया, फाइकस डयूमोसा,फाइकस हिस्पिडा, केले की सभी प्रजातियां, कैरेक्स, सेक्रम की प्रजातियां आदि।

इसके अलावा आर्किड की कई प्रजातियां सजावट के रूप में (अन्य उपयोगों के अलावा) उपयोग में लाई जाती हैं।

चाहे त्यौहार हो अथवा कृषिकार्य या भोजन हो अथवा पशुआहार, अरुणाचल की समस्त जनजातियां इन वनस्पतियों पर आश्रित हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार अरुणाचल प्रदेश की राजधानी ईटानगर जो पापमपरे जिला में अवस्थित है–निशी जनजाति की बहुलता है। पापमपरे की यह निशी जनजाति 86 पौधों को औषधि के रूप में, 66 प्रजातियों को शाक के रूप में, 55 खाने के रूप में, 6 प्रजातियाँ पेय रूप में, 12 प्रजातियां सांस्कृतिक महोत्सवों में, 25 जातियां टिम्बर के रूप में, 16 पौधे फर्नीचर हेतु, 5 प्रजातियां छत निर्माण हेतु, 11 प्रजातियां धार्मिक अनुष्ठान हेतु, 10 प्रजातियां सौन्दर्यकरण हेतु, 23 पशु चारा हेतु तथा 20 वनस्पति प्रजातियां ईंधन के रूप में प्रयोग में लाती हैं।

आर्किडों का जिक्रकिए बगैर अरूणाचल की वनस्पति विविधता का जिक्र अधूरा रह जाता है। अपनी रंग विरंगे लुभावने एवं मनमोहक आकृतियों वाले उन आर्किडों की कुल 600 प्रजातियां अरूणाचल में विद्यमान है। उनमें लगभग 175 प्रजातियां दुर्लभ एवं लुप्तप्राय श्रेणी में हैं जबकि 30 प्रजातियां इंडेमिक है। उसी कारणवश अरूणाचल को 'आर्किड का स्वर्ग' कहा जाता है। लोवर सुबन सिरी, ईटानगर आदि स्थानों में उनके कृत्रिम संवर्धन और पैदावार बढ़ाने हेतु प्रयास किये जारहे हैं। आज जरूरत है कि हम इनको बढ़ावा दें जिससे सभी वनस्पति विविधताएं अपने प्राकृतिक रूप में कायम रहें। यही हमारी भावी पीढ़ी को दी जाने वाली अमूल्य सौगात होगी।

पूर्वोत्तर राज्य का एक महत्वपूर्ण आर्किड : एरीडिस

एस. एल. गुप्त
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

पीनसिफ (आर्किड) का नाम आते ही रंग बिरंगे आकर्षक फूलों का चित्र सामने आ जाता है। आर्थिक रूप से उपयोगी इन आर्किडों का पुष्पी पौधों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। आर्किडेसी (orchidaceae) कुल के अन्तर्गत आने वाले इन आर्किडों की विश्व में लगभग 25,000 प्रजातियां हैं। इनमे से लगभग 1100 भारत के विभिन्न भागों में पाई जाती हैं। सबसे अधिक 650 प्रजातियां पूर्वोत्तर राज्यों में विद्यमान है जिनमें अरूणाचल प्रदेश प्रमुख है। इसके अलावा 250 प्रजातियां प्रायद्वीपों एवं लगभग 239 प्रजातियां पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है। उन्हीं में से एक आर्किड एरीडिस है जिसके भारत में प्रायः कुल 12 प्रजातियाँ पाई जाती है।

एरीडिस एक अधिपादपीय अथवा शैलपादपीय पौधा है जिसका सर्वप्रथम वर्णन एक पुर्तगाली वनस्पतिज्ञ लारेरो ने सन् 1790 ई; में किया था। हुकर ने सन् 1890 में कुल 22 प्रजातियों का उल्लेख ब्रिटिश इंडिया क्षेत्रों से (आज के भारत, बंगला देश, म्यानमार, श्रीलंका एवं पाकिस्तान) किया था। पूर्वोत्तर राज्यों में प्राप्य प्रजातियों में से प्रमुख है–एरीडिस मल्टीफलोरा एवं ए. ओडोरेटा। ए. मल्टीफ्लोरा हिमालय, खासी पर्वत (असम), उत्तरी बंगाल, विशाखापत्तनम तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में प्राप्त है जबकि ए. ओडोरेटा हिमालय, उत्तरी भारत, खासी पर्वतीय क्षेत्रों एवं पूर्वी घाट में पाया जाता है। इन दोनों प्रजातियों का पुष्पन काल मई-जून, पुष्पन दिवस क्रमशः 30 एवं 13 दिन तथा सफेद गुलाबी, हल्के सुगंधित पुष्पों का आकार 2.3-2.7 × 2.1-2.0 होता है। प्रति पुष्पक्रम में पुष्पों की संख्या 33-36 के मध्य होती है।

एरीडिस में स्यूडोबल्ब (Pseudobulb) नहीं होते हैं। उसका तना गोलाकार, बहुधा काष्ठीय एवं पत्तियां चपटी होती है। विकिसित पत्तियों के मुहाने अनियमित आकार के होते हैं। आकर्षक पुष्प रेसीम पुष्पक्रम में तथा मोमयुक्त होते हैं।

राव (1978) के अनुसार उनको लगाने का उचित समय वर्षाऋतु (अगस्त-सितम्बर) हैं परन्तु कुछ प्रजातियां वर्षाकाल के पूर्व ग्रीष्म ऋतु में ही वृद्धि करती हैं। ऐसी दशा में वायीय जड़ों (aerial roots) का अत्यधिक विकास, पत्तियों का पीला पड़ना अथवा जड़ों एवं पत्तियों का सिकुड़ना इस बात का द्योतक है कि इनको जल की आवश्यकता है। मृदा के सूखने पर एक दिन के अंतराल पर अन्यथा सप्ताह में एक बार पानी देना अति आवश्यक है।

एरीडिस घरों के अंदर, पोर्टिको, बरामदों आदि में हैंगिग बास्केट में सजावट हेतु उपयोगी है। अतएव आवश्यक है कि इनको कृत्रिम संवर्धन गृहों में बड़े पैमाने पर उगाने हेतु 'जर्म प्लाजम' बैंक बनाए जाये जिससे संकर प्रजातियों का विकास, रोपण एवं संरक्षण करने के साथ-साथ बहुमूल्य विदेशी मुद्रा को भी अर्जित किया जाय।

पर्यावरण में विदेशी पौधों का योगदान

दया शंकर पाण्डेय
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

भारत की कुल लगभग 46,000 वनस्पति जात में लगभग 17 हजार जाति के पुष्पधारी पौधे पाये जाते हैं जिनमें लगभग 5 हजार जातियाँ ऐसी हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती हैं। चटर्जी (1940 व 1962) के अनुसार लगभग 61.5 प्रतिशत द्विबीजपत्रीय पौधों का मूल उत्पत्ति स्थान भारत है। महेश्वरी (1962) के मतानुसार लगभग 40 प्रतिशत पुष्पधारी पौधे भारत में विदेशी हैं। पाण्डेय (1984) ने केवल इलाहाबाद की वनस्पति जात में 38.16% विदेशी पौधे का आकलन किया हैं।

हम जो कुछ खाद्य, अखाद्य, पेय पदार्थ या अन्य पौधों को देखते हैं, लगता है कि वे सभी भारतीय ही हैं, लेकिन उनके वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि बहुत से जाति के पौधे भारतीय मूल के नहीं हैं जो समय-समय पर विश्व के विभिन्न जलवायु एवं भौगोलिक वातावरण से आकर या लाकर भारत में लग गये। कुछ पौधों का विस्तार, इतना विस्तृत है कि उनको विदेशी कहना उपयुक्त ही नहीं होता।

विदेशी पौधों को हमारे देश में लाने का श्रेय मुगल, पुर्तगीज, स्पेन वासी, फ्रांसीसी, अंग्रेज, पौध-अन्वेषण कर्त्ताओं वैज्ञानिकों / वैज्ञानिक-संस्थाओं तथा पौधों में अभिरूचि रखने वालों को जाता हैं।

विदेशी पौधों के प्रवेशन का मुख्य कारण सम्भवतःजब विदेशी / पर्यटक / वैज्ञानिक अपने देश से भारत आये तो अपने नये वातावरण गें अपनी अभिरुचि के अनुसार उन पौधों को लाये, जिसके वे अभ्यस्त थे। अपने नये वातावरण / पर्यावरण को संतुलित करने की दृष्टि से उन्होंने सुन्दर, आर्थिक महत्व या उपयोगी पौधों की पुरस्थापित किये होंगे। अधिक विदेशी शासकों का मुख्य ध्येय लाभकारी पौधों को लाकर कृषि करके व्यापार करने का भी था। अनुसंन्धान हेतु भी विदेशीपौधे भारत में लाये गये। बहुतायत जाति के खरपतवार-घासें बीजों के सम्मिश्रण एवं आकस्मिक रूप से विदेशों से आकर भारत-भूमि पर इस प्रकार फैल गये जो आजकल हमारे कृषकों की बड़ी जटिल समस्या बन गई हैं, फलस्वरूप हम भारतीय वनस्पति-जात (FLORA) में शुद्ध भारतीय मूल के पौधों को नहीं देख सकते। हुकर (1904) तथा चैम्पियन एवं ट्रेवर (1938) के मतानुसार, भारत की वनस्पति आसपास के देशों से मिश्रित है।

विदेशी मूल के पौधों में मुख्यतः अनाज-मक्का (मध्य अमेरिका), ज्वार (अरब) बाजरा (पश्चिम अफ्रीका), दलहन – चना, बाकला (भूमध्य सागरीय क्षेत्र), चारा– लूसर्न (ईरान तथा

आफगानिस्तान), बरसीम (सीरीया तथा आस्ट्रेलिया), रहोडेरा घास, गाइना घास, नेपियर घास (उष्ण कटिंवंधीय अफ्रीका), शाक-सब्जी – आलू (दक्षिणी अमेरिका), फूल गोभी, बन्दा गोभी अथवा पत्ता गोभी, गांठ गोभी, शलजम, गाजर, चुकन्दर (यूरोप), भिंडी, लोबिया, टमाटर (उष्ण कटिबंधीय अफ्रीका), पालक (पारस व अरब), मूली (चीन व जापान); फल– अमरूद (मध्य अमेरिका), रामफल, सीताफल (शरीफा), लक्ष्मण फल, मकोय अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय देश), कमरख (पूर्वो इन्डोनेशिया), चीकु (अफ्रिका का उष्णकटिबंधीय क्षेत्र), लीची, खुबानी, आलूबूखारा, आड़ू (चीन), इमली (अफ्रीका का उष्णकटिबंधीय क्षेत्र), जंगल जलेबी (मैक्सिको),लुकाट (चीन व जापान), स्ट्रावेरी (यूरोप व पश्चिमी एशिया),नाशपाती (मध्य व पश्चिमी चीन), माखन फल (मध्य अमेरिका), अनार (ईरान), पपीता, रसगुल्ला फल (मध्य अमेरिका व वेस्ट इन्डिज),अन्नानास (दक्षिणी अमेरिका), जमरुल (मलेशिया), पावरोटी फल (पीलेनेशिया); इमारती वृक्ष – महोगनी (ज़ामाइका व मध्य अमेरिका), बड़ा पत्ता महोगनी (हीन्दुरास)। बिलायती बबूल (आस्ट्रेलिया), बबूल (अरब व उत्तरी अफ्रीका); छाल-सत्व एवं रंग – लटकन (अमेरिका), डिवी-डिवी (अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र), सिल्वर बैटिल (आस्ट्रेलिया) हैं।

नशीले तथा पेय पदार्थ वाले पौधों में – तम्बाकू, कोकेन (दक्षिणी अमेरिका), कहवा (इथोपिया), लाइबेरियन कहवा (लाइबेरिया), कोको या चाकलेट-पौधा (दक्षिणी अमेरिका);तेल एवं वसायुक्त पौधे – काजू (अमेरिकाका उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र), अलसी (भूमध्य सागरीय झेत्र),मूँगफली (दक्षिणी अमेरिका), सफेदा या युकालीप्टुस (आस्ट्रेलिया), सोयावीन (सम्भवत:कोचीन चाइना, जापान व जावा), सफेद बोतल ब्रुश (मलेशिया), सूर्यमुखी (उत्तरी अमेरिका), पीपरमिंट (यूरोप) एरंड (अफ्रीका), पाम-आयल (पश्चिमी अफ्रीका)।

ओषधीय पौधे– इपेकाक/इपेकान्हा (ब्राजील), सतुरी (भूमध्यसागरीय क्षेत्र), गुलाव (सीरिया), विनौला (अरब व एशिया माइनर), छोटा चाँद (वेस्ट इन्डीज), लाजवंती या छुई-मुई (दक्षिणी अमेरिका), धतुरा (अमेरिका), घृतकुमारी / घीतकुवार (भूमध्यसागरीय क्षेत्र), सतावर/सतमूली (यूरोप, उत्तरी अफ्रीका व पश्चिमी एशिया), अकानदी/परियाबेल (दक्षिणी अमेरिका), रेशेदार पौधें – कपास (मैक्सिको), रम्डी (चीन, जापान व मालाया), मारीशस हेम्प (ब्राजील) प्रमुख हैं।

अलंकृत बागवानी में मौसमी पौधों का विशेष स्थान है जो प्रायः विदेशी मूल के हीहैं। इन पौधों को लाने का प्रमुख श्रेय अंग्रजों को जाता है। इन पौधों में एजीरेटुम, कास्मोस, डाहलिया, जीनिया, सालविया (मैक्सिको), गेंदा (अफ्रीका/मैक्सिको), कार्नेशन, होलीहॉक, एस्टर (चीन), लार्कस्पर, नाइजेला, कान्डीटाफट, स्टॉक, पैंजी, स्वीट विलियम (यूरोप), वाल फलावर, डेजी, कान्डीटाफट अम्बेलाटा (दक्षिणी यूरोप), कार्नफलावर, लाइमोनियम (दक्षिण-पूर्व यूरोप), गार्डेन पापी (यूरोप, पश्चिमी एशिया तथा

उत्तरी अफ्रीका), आन्टीराइनुम (दक्षिणी यूरोप, सीरीया तथा उत्तरी अफ्रीका), वायला (यूरोप व अफ्रीका), सापोनारिया (यूरेशिया), कालीफोर्नियन पॉपी, कलार्किया (कालीफोर्निया), क्लीयोम, पार्चुलाका, नास्टशियम, ब्रोवालिया, गार्डेननिकोटियाना, शाइजेन्थुस, माइमुलस, (दक्षिणी अमेरिका), गोडेशिया, कोरियोप्सिस, गालार्ड़िया (उत्तरी अमेरिका), आन्चुसा, गोमोलोसिस, डीमोफोर्थिका, वेनाडियम, लोवेलिया, नेमेसिया, गाजानियाजोरबेरा, नीलीडेजी (दक्षिणी अफ्रीका), आर्क्टाटिस (अफ्रीका), पिंक (चीन व जापान), गिप्सेफिला (काकाशश व एशिया माइनर), क्लाइएन्थुस, ब्राकीकोम, हेल्लीप्टेरुम (आस्ट्रेलिया), स्वीट पी या गार्डेन पी (इटली), स्ट्रा फलावर-हेलीक्राइसम (फलोरीडा से टैकसास), साइनोग्लासुम, हालीट्रोप (पेरू) पेटुनिया (आर्जेन्टाइना), टोरेनिया (कोचिन चायना), लाइनेरिया (पुर्तगाल व उत्तरी अफ्रीका) उल्लेखनीय हैं। इन्हें गमलों या क्यारियों मेंसामूहिक अथवा अलग-अलग रोपण करके (मौसम के अनुसार) इन विविध रंगों वालों फूलों से आनन्द लिया जाता हैं।

विदेशी मूल के अलंकृत झाड़ियों, लताओं एवं वृक्षों में गुड़हल, गंधराज, गुलाब, सावनी (चीन), विस्टरिआ (चीन व बर्मा), उर्बसी या आम्हेरास्टीया (म्यामार, बर्मा), मोरपंखी, चाइना पाम (चीन व जापान), हिबिस्कुस सीजोपेटाटनुस, गोरख इमली या झार-फानूस, फाउन्टेन-वृक्ष, मुसान्डा (अफ्रीका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र), चीता, शाखान्वित ताड़ (अफ्रिका), भोला (अफ्रीका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र व मलाया), वानीस्टेरा,लहसुन-लता, बाउगेनवीलिया, अलामान्डा, रासीलीया, फूलझरी, आलूलता, पैशन-फलावर, मिर्च-गुड़हल, गुलशब्बो (मेक्सिको), लालचम्पा (मैक्सिको से वेनेजुला), जाक्वीनीया (मैकसिको व वेस्ट इंडीज), सफेद गुड़हल (सीरीया), मोमबती वृक्ष (पनामा), कस्तुरी, अपराजिता, मुना या हामोलिआ, एली-एल्डर, स्टाचिटारफीटा, पीला कनेर, मानीहाट, कालवीलिया, वुडलीजा, हजार खारा, ट्रावेलर्स ट्री (अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र), सालीडागो, सारंगा, नागलिंगम् या शिवलिंगी वृक्ष, बासन्ती, आलू वृक्ष, आन्टीगोनान (दक्षिणी अमेरिका), विलायती सीरिंस, क्रिस्टमास पोनेसेटिआ (मध्य अमेरिका), स्वीट आकेसिआ (अमेरिका), कनेर (चीन व कोचीन चाइना), रुपासी या सिल्वर-ओक (क्वींस लैन्ड व न्यू साउथ वेल्स), कृष्णचूरा, कंटक लिली/काटास्वीआ, सम्पानी या पोर्टलान्डिआ, रात-की-रानी, दिन-का-राजा, बिलायती कीकर (वेस्ट इन्डीज), रंगून लता (बर्मा, मलाया,न्यू गायना व फीलीपाइन्स), बधारा, बेट्निआ या फीलीपाइन्स का मुसण्डा (फीलीपाइन्स), लाल लसोरा,जयाती (कयूबा), लाबोनी या लीमोनिआ (कयूवा व ब्राजील), गुलमोहर, डोम्बेया (माडागास्कर), पीला गुलमोहर (श्रीलंका), नीली गुलमोहर (आर्जेन्टाइना व ब्राजील), जावा कासिआ (जावा व सुमात्रा), गार्डेन क्रेटान (जावा से आस्ट्रेलिया), बोतल ब्रुश क्रिस्टमास वृक्ष, झाऊ व क्वींस लैन्ड काउरी (आस्ट्रेलिया), युग्म-नारियल/डबल कोकोनट सीचेलस द्वीप समूह), विक्टोरिआ जल कुमुदिनी, सतावा या गुस्ताविआ (ब्राजिल), कुजिआना डाल कुमुदिनी (पाराग्वे) आदि मुख्य हैं।

स्त्री रोगों की चिकित्सा में अशोक वृक्ष

महेश कोठारी एवं दिनेश शिरोडकर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''–वेदोक्ति अनुसार जहाँ नारियों की पूजा व सम्मान होता है वहाँ देवताओं का निवास रहता है। भारतीय समाज में प्राचीन कालसे नारी को जननी, शक्ति, त्याग व क्षमा की मूर्ति के रूपमे जाना व पूजा जाता रह है। हिन्दू धर्म में विद्या, शक्ति, धन आदि की प्राप्ति के लिये क्रमशः सरस्वती, दुर्गा, और लक्ष्मी की आराधना की जाती रही है। यहाँ तक कि सारे पापो को समूल नष्ट करने और हरने वाली, और अंततः मोक्ष प्रदान करने वाली पवित्र गंगा भी स्त्री का ही स्वरूप है।

भारतीय औषधि विज्ञान ''आयुर्वेद' में स्त्रियों के स्वास्थ व व्याधियों के उपचार को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योकि एक स्वस्थ एवं निरोग गृहिणी ही परिवार को समृद्ध व सुखी बना सकती है। महर्षि वाग्भट्ट ने आयुर्वेद की आठ शाखाओं में स्त्री रोग एवं प्रसूतितंत्रका सविस्तार उल्लेख किया हैं। आयुर्वेद में वर्णित ऐसी अनेकों वनस्पतीय औषधियों में ''अशोक वृक्ष'' का महत्वपूर्ण स्थान हैं।

पहचान :–भारत में संस्कृत, हिन्दी एवं बंगला में पहचाने जानेवाले वृक्ष ''अशोक'' को गुजराती में आसोपालव, तेलगुमें ''कन्केली'', मराठीमें ''सीतेचा वृक्ष'' वा जासुंदी, मलयालम में ''हेमापुष्पम्'', तामील में ''अशोगम्'', कन्नड़ में ''अन्वन्गा'', आसामी में ''खामकोल'' और लाटिन में ''सराका असोका (रोक्सब.) डी बिल्ड. नाम से जानतें हैं।

प्राप्ति एवं वर्णन :– सिसालपिनीएसी कुल का भारतीय मूल का यह वृक्ष जंगली अवस्था में अनेकों जगह पाया जाता है एवं शोभा के लिए बाग–बगीचेमेंभी लगाया जाता हैं। 8 से 10 मीटर ऊँचे इस सदाबहार वृक्ष के पत्ते द्विपक्षी, लंबाकृति, 4-6 को जोड़ी में आते हैं। फूल लाल, एवं नारंगी – पीले रंग के और अपरिमीत पुष्प गुच्छ में आते हैं। फल दीर्घ,–लंबगोल, चर्मील रहते हैं। बीज लंब–गोल एवं चपटे होते हैं।

उपयोग :–वृक्षकी छाल, पुष्प एवं बीजोंका दवामें उपयोग किया जाता हैं।

छाल :– अशोक वृक्ष की छाल लाल रंगकी, गुणमें ठंडी और स्वादमें कडु, तुरी, मल को रोकने वाली किन्तु कब्ज मिटाने वाली, वर्ण (त्वचा)को स्वस्थ रखने वाली, तृषा, दाह, कृमि, बिष एवं रक्त दोष को मिटाने वाली है। इसलिये यह मलशुद्धि करने व रक्तदोष शमन में उत्तम एवं शरीर की कांति – सुंदरता बर्धक है। साथ में पित्त, गुल्म, उदर रोग, शूल, बावासीर, अर्श, बुखार

आदि बीमारियों को दूर करने में भी अत्यंत उपयोगी है। यह बिच्छु दंश के विष की भी हारक है।

महिलाओं के आरोग्य का आधार मुख्यतः उनके ''गर्भाशय'' के स्वास्थ्य पर निर्भर है। जब उनपर सूजन आती है तब वह शिथिल बनता है और उसमें से बहुत बार सफेद या पीलेरंग का स्राव होता है, जिसे ''श्वेत प्रदर''या ल्युकोरीया कहते हैं। इस रोगके कारण कमजोरी, वजन का कम होना, कभी कभी अवांछनीय (अनपेक्षित) दुर्गंधी और उसके कारण लघुता (डीप्रेशन) की अनुभूति आदि होती है। उनमें ''मासिक धर्म की अनियमिता भी होती है और विभिन्न प्रकृति के अनुसार अधिक रक्त स्राव भी होता हैं। इन सभी कठिनाईयों में अशोक की ''वृक्ष छाल'' का काढा अमोघ उपाय है। इसीलिये अशोक को महिलाओंके शोक हरनेवाला मित्र भी माना गया है।

पुष्प :– अशोक के पुष्प के चूर्ण को पानीमें लेनेसे चक्कर, उलटीयाँ (वोमीटींग) सरदर्द, अपचन, कब्ज, मधुमेह, रक्तातिसार (ब्लड – डिसेन्ट्री) आदिमें राहत मिलती हैं। वृक्ष-छाल एवं पुष्प का मिश्रण ''हृदय रोग'' एवं महिलाओं के रोगोंकी चिकित्सा में उपयोगी हैं।

फल : – अशोक के फल ''पशुचारा'' के रूप में उपयोग में आते हैं। (आसाम)

बीज :– अशोक के बीजोंको पीसकर बनाया गया चुर्ण पानीके साथ लेने से मुत्राघात, पथरी आदि शारीरिक दोष दूर होते हैं। बीज-पत्र (कोटीलेडोन) – मुखवास के नाते खाया भी जाता है।

रासायनिक तत्व गुणधर्म :– अशोक वृक्ष का रासायनिक पृथ्थकरण में विविध रासायनिक घटक जैसे केटेचोल। टैनीन (हिमोसायलीन), सेपोनीन जैसे जरुरी तैलीय पदार्थ स्टिरोइड्स जैसे-केटोस्टीरोल्स एवं पी 2 जैसें फिनोलीक गलुकोसाइड पाये गये हैं जो उपरोक्त शारीरीक दोष – निर्मूलन में सहायता करते हैं।

''अशोकारिष्ट'' :– आयुर्वेदज्ञों के मत अनुसार ''अशोकारिष्ट'' (15 ग्राम अशोक छाल + 1 कप दुध +1 कप पानी को उबालकर उसमें इलायची, नागकेसर डालकर) का दो-तीन चम्मच भोजन के बाद लेने से स्त्री रोगोमें बहुत लाभकारी है।

धार्मिक मान्यता : – अशोक वृक्ष के बारेमें हमारे धार्मिक ग्रंथोंमे भी काफी लिखा गया है। ''पंचवटी'' के पाँच पवित्र बृक्षों में आंवला, बरगद, पीपल, बेल के साथ ''अशोक'' भी है। ''स्कन्द पुराण'' अनुसार इस पंचवटी की संरचनामें आयुर्वेद मनोविज्ञान, वानिकी, वास्तुशास्त्र व पर्यावरण संरक्षणके ज्ञान का उपयोग हुआ है। गौतम बुध्द एवं रतिस्वामी ''कामदेव'' जो प्रेमके देवता माने जाते हैं उनके साथ भी ''अशोक''जुडा हुआ है। प्राचीन काल में रावणने देवी सीता का हरण करके उनको ''लंका'' में अशोक वाटिका में रखा था। तब ''अशोक''वृक्ष ही उनका आश्रय स्थान था। शायद इसी कारण ''अशोक'' को महिलाओं के सर्व प्रकार के ''शोकहारक व दर्द शामक'' वृक्षमित्र मानागया है।

पुष्पगुच्छ की वनस्पतियाँ

महेश कोठारी और पी. सत्यनारायण राव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पश्चिम क्षेत्र, पुणे

''पुष्पगुच्छ व गुलदस्ता'' अपनी नैसर्गिक सुंदरता, खूबसूरती एवं सुवास के कारण सचमुच मानव मन को मोहित एवं प्रसन्न करता है। शायद इसीलिये हम किसी व्यक्ति विशेष, अतिथि, आदि के प्रति प्रेम, स्वागत, सम्मान व्यक्त करने के लिये मनभावन पुष्पगुच्छ या पुष्प भेंट करते हैं। इतना ही नही, किसी व्यक्ति का जन्म दिन, लग्न समारंभ, यात्रा (स्वदेश, विदेश), तबादला एवं मृत्यु के समय भी हम हमारी शुभेच्छा, शांति, प्रेम अथवा शोक, संवेदना व्यक्त करने हेतु पुष्प, पुष्पगुच्छ व पुष्पचक्र भेंट करते / चढ़ाते हैं।

पुष्पगुच्छ की सजावट में भी उनको ज्यादा आकर्षित करने के लिये कई तरह की चीज–वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। जैसे – रंगीन कागज, रंगीन थर्माकोल की गोलियाँ, बाँस से वनाई गई टोकरियाँ आदि। ऐसे पुष्पगुच्छ को ढकने (कवर करने) के लिये भी पारदर्शक कवर कागद का उपयोग किया जाता है, जिससे ऐसे गुलदस्ते ज्यादा समय / दिन टिकते हैं।

इस प्रकार के मनमोहक पुष्पगुच्छों का प्रचलन हाल के युग में बड़े बड़े शहरो के अलावा छोटे छोटे शहरो एवं ग्राम्य विस्तारमें भी उनका उपयोग बढ़ता जा रहा है। ''पुष्पगुच्छ'' बनाने का काम एक लघु उद्योग (''कोटेज इन्डस्ट्री'') की भांति फैल रहा है जिस में हजारो लोगों को काम भी मिल रहा है। पुष्प/पुष्पगुच्छ की दुकानें, स्टॉल आदि शहरों मे अधिकतर बाजारों, रेलवे स्टेशन, एयरपोर्ट आदि स्थानों पर स्थित होती हैं–जिससे उनकी यथासमय उपलब्धि हो सकती है।

ऐसे नयन-मनोहर पुष्पगुच्छ व गुलदस्तों को बनाने के लिये कई प्रकार के पुष्पी व पत्तों का उपयोग किया जाता हैं। मुख्यतः सोलिडागो, आर्टमिसिया, विविध गुलाव की जातियाँ, एस्टर, ग्लेडिओलस, मयुरपंख (थुजा) आदि पौधों को व्यापक रूपमें उगाया जाता है। इसके अलावा विविध प्रान्तोमें मौसम अनुसार विविध प्रकार के पुष्पों जैसे–सूर्यमुरवी के कुल की वनस्पतियाँ (एस्टेरेसी) रोजेसी, माल्वेसी, अमारिलिडेसी (क्राइनम प्रेक्रासियम), अपोसायनेसी छत्रक वर्ग (एपीएसी) रुबिएसी (इक्झोरा) युफार्बिआसी (जैसे-लालपत्ते, क्रोटोन) आर्किडेसी, केक्टेसी, त्रिअंगी वनस्पति (जैसे-हंसराज आदि) के कुलों के पुष्पों/पत्तों को गुलदस्तों के लिये उपयोग किया जाता है। कई बैंक, संस्थाओं में जहाँ नैसर्गिक फूल / पुष्पगुच्छ की जगह कागद या प्लास्टिक के नकली पुष्प/पुष्पगुच्छ भी स्थानिकी शोभा में अभिवृद्धि के लिये रंगीन पोटमें या टोकरियों में रखे जाते हैं।

उपरोक्त बताये पुष्पगुच्छों की सजावट, विविध

उपयोग आदि में भारत अभी भी थाईलैन्ड, दक्षिण पूर्व-एशिया आदि देशों से पीछे हैं। पुणा जैसे शहरो में गणेशोत्सव,दशहरा, दिवाली के त्योहार में पूजा निमित्त झेन्डु ('मेरीगोल्ड') पुष्पों के पूजा के लिये अधिक व्यापक मात्रा में उपयोग किया जाता है।

मानवी मन को पुष्प/पुष्पगुच्छ अपनी सुंदरतासे प्रसन्न करता है किन्तु देव/देविओं को भी उनकी आराधना, प्रसन्नता हेतु विविध पुष्प/पुष्पहार भेंट चढ़ाये जाते हैं। जैसे-शनिवार के दिन आक/रुई के (केलोट्रोपिस) पत्तों व पुष्पोंकी माला मारुति को चढ़ाई जाती है। उसी प्रकार ''कमल'' का पुष्प गणेशजी एवं लक्ष्मीजी को एवं धतूरा का पुष्प शिवजी को प्रिय है। ''पुष्पगुच्छ'' में उपयोग आनेवाले करीब 30 पौधों की जानकारी प्रस्तुत लेखमें निम्नतः दी गई है।

1. सोलिडागो कानाडेन्सिस लिन.(एस्टरेसी')

उत्तर अमेरिका में पाये जाने वाले करीब 1_1.5 मी. ऊँचाई के इस पौधे के पत्ते लेन्स आकार के, नुकीले एवं आवरीत पर्णतल वाले, पुष्प पीले रंग के होते है।

2. सोलिडागो रेमोरालिस एइट.('एस्टरेसी')

उत्तर अमेरीका का यह पौधा रोमयुक्त चमचाकृति पत्तोंवाला होता है। उसके पुष्प भी पीले रंग के एक बाजू में झुके हुए पुष्पविन्यास में रहते हैं। यह पौधा पूना के बागानो में उगाया जाता है।

3. **आर्टेमिसीआ ड्रेकनक्युलस लिन. ('एस्टरेसी')**

युरोपीय मूल के इस बहुवर्षायु पौधके पत्ते त्रिजयावर्ती, स्तंभीय, रेखाकार, लेन्स या दीर्घ लंबगोव आकार के और क्वचित दंतुरित किनारी वाले रहते हैं। पुष्प हलके बदामी रंगके, शाखित पुष्प विन्यासमें या तीन के गुच्छ में रहते हैं। यह पौधा पूना के बागानो में उगाया जाता है।

4. टाजेटिस एरेक्टा लिन. (झेन्डु, आफ्रिकन मेरीगोल्ड, 'एस्टरेसी')

मेक्सिको मे पाया जानेवाला करीब आधा से 1.2 मीटर उंचाईवाला टट्टार यह पौधा, संमुख या कांतरित पत्तोंवाला, पिच्छाकृति में विभाजित, लेन्स रूपये, करवती विभागोवाला, पीले या ''नांरगी'' रंगके किरण व विश्व पुष्पकों वाला, मुन्डाकृति पुष्प विन्यासमें एवं काले, रेखाकृति या लंबगोल फलवाला रहता है। इसे व्यापक मात्रा में बागानोंमें उगाया जाता है।

5. एस्टर लाविस लिन. ('एस्टरेसी')

उत्तर अमेरिका का यह बहुबर्षायु पौधा मजबूत तना वाला है। उसके किरण पुस्पक नीले या जांबली रंगके होते है। पुष्प शाखित पुष्पविन्यास एवं गुच्छमें रहते है। यह पौधा पूना के बागानोमें काफी मात्रा में उगाया जाता है।

6. एस्टर आमेलस लिन. (मिकेल्नेस डेईसी; ''एस्टेरेसी'')

उत्तर अमेरिका का यह पौधा बहुबर्षायु, सीधा, पत्ते त्रिजयावली अदंडी, चमचाकृति व लेन्स आकारमें। पुष्प शाखित, समतलीय पूष्पविन्यासमें, अग्रीय, मूंडक आकारमें किरण पुष्पक भूरे या जांबली, मध्यवाले बिम्ब पुष्पक पीले, पलिकामय। फल काले,

रेखा कृतिमें। रोम ज्यादा तंतुयुक्त। यह पौधा बागानमें उगाया जाता हैं।

7. कालेन्डूला ओफिसीनालिस लिन. (मारिगोल्ड; ''एस्टरेसी'')

दक्षिण युरोप के करीब 15-45 सें. मी ऊँचा इस एकवर्षायु पौधे के पत्ते दीर्घ लंबशील या व्यस्त अंडाकार तथा पुष्प मुंडक प्रकारके पीले रंग के होते है व फल दीर्घ लंबगोल, चक्र, कंटकी, पसली जैसी रेखा वाले, काले टपके वाले हैं। वह पौधा बागानमें सभी जगह उगाया जाता है।

8. ''क्रिसेन्थेमुम इन्डीकुम लिन.(''एस्टरेसी'')

चाईना एवं जापान का यह पौधा बहु वर्षायु एवं सीधे तना वाला है। उनके पुष्प, पीले रंग के मुंडक पुष्प विन्यास में होते हैं।

यह पौधा भी महाराष्ट्र के बागानोमें व्यापक स्तर में उगाया जाता है।

उपयोग :–संपूर्ण पौधा काली मिर्चाके साथ रतिरोग में एवं पुष्प पेट दर्द व हल्का जुलाव के लिये उपयोगी है।

9. हेलिआन्थस आन्युअस लिन. (सुरजमुखी, सुर्यफूल; 'एस्टरेसी')

पश्चिम अमेरिका का यह शाकीय पौधा 1-3 मी. ऊँचा, अति रोमयुक्त हैं। पत्ते संमुख, एकांतरीत, अंडाकार, सुक्ष्माग्ररहते हैं। पुष्प पीले, एकाकी मुंडक, पुष्पविन्यास में और फल काले व्यस्त अंडाकृति वाले हैं।

उपयोग : यह पौधा बीजों में से प्राप्त ''खाद्य तेल'' के लिये पूरे महाराष्ट्र में उगाया जाता है।

10. हेलिआन्थस रिगीडुस देस्फ. (छोटा सूर्यफूल; ''एस्टरसी'')

उत्तर-पश्चिम अमेरिका के इस एक वर्षायु शाकीय पौधे में पुष्प मुंडक पुष्प विन्यास में, किरण पुस्तक घट्ट सोनेरी रंगके और बिम्ब पुष्पक चोकलेटी रंग के होते हैं।

11. लेक्टुका सटाईवा लिन. (''गार्डन लेटयुस. ''एस्टरेसी''

30-40 सें. मी. ऊँचा इस पोधेके पत्ते अदंडी, अंडाकार-दीर्घ लंबशील, कंटकी दंतुरीत पर्णकीनारी वाले रहते हैं। पुष्प पीले, शाखित, मुंडक पुष्पविन्यास में और फल काले-बदामी व्यस्त-लेन्स आकृति में 6-8 पसली जैसी रिब वाले, सफेद रोमयुक्त है।

लगभग पूरे महाराष्ट्र में बागानोमें उगाया जाता है।

12. झिनीआ इलेगन्स जेवव। ('एस्टरेसी')

मेक्सिको का यह पौधा महाराष्ट्र में बागानोमें उगाया जाता है। पौधा 30-90 सें. मी. ऊँचा पत्ते अंडाकार-लंबगोल, सुक्ष्माग्र, दोनों बाजूमें रोम-युक्त। किरण पुस्तक गुलावी रंग के, बिम्ब पुस्पक पीले मुंडक पुष्पविन्यासमें। फल लेन्स आकृतिवाले रहते हैं।

13. बोम्बाक्स सिबा लिन. (समूल, सावर; ''बोम्बेकेसी')

महाराष्ट्र के सभी प्रपाती वनोंमें प्राप्त यह पेड़

20-30 मी. ऊँचाईवाला, पत्तों 5-7 पर्णिकावाले, नुकीला या दीर्घ पर्णाग्रवाला रहता है। पुष्प आकर्षक लाल रंग के, बड़े, एकाकी जोडी में या गुच्छ में पर्ण विहीन शाखा के टोच विस्तार में पाये जाते हैं। फल स्फोटी प्रकार के अंडाकार–दीर्घ लंब गोल, 5-कोष्टीय। बीज अनेक, अंडाकार, सफेद-पनास में, निमग्न।

उपयोग : धार्मिक व "सिल्क कोटन" वृक्ष के नाते पहचाना जाने वाला भारतीय पेड़ के फलो से प्राप्त रेशमी कपास से तकीया, गद्दी आदि बनाया जाता है।

14. अब्युटिलोन स्ट्राईएटम डिक्स. एन्ड लिन्डल. ('माल्वेसी')

यह पौधा महाराष्ट्र के बागानो में खूबसूरत नांरगी पुष्पों के लिये उगाया जाता है। 1-2 मीटर ऊँचा पौधा जिसके पत्ते गोल या अंडाकृति वाले, हदयाकार 3-5 खंडो वाला रहता है। पुष्प नांरगी या गुलावी रंग के, बीचमें जांबली शिराओं वाले, एकाकी, क क्षीय, वज्रदल घंटाकार, दोनों बाजूपर घट्ट रोमयुक्त और फल मूत्रपिंड आकार के रहते हैं।

15. आल्सीआ रोसीआ लिन. ('माल्वेसी')

यह पौधा बी महाराष्ट्र क, बागानोमें आकर्षक फूलों के लिये उगाया जाता है। यह पौधा 1.5-2 मीटर ऊॅंचाई वाला और पत्ते गोल-हदयाकार, 5-7 खंडोवाला रहता है। पुष्प विविध रंगोवाला एकाकी, कक्षीय या अपरिमित कलगी पुष्प पिन्यास में। फल 20-40।

16. हिबिस्कुस रोसासाइनेन्सिस लिन. (जासुन्द, जासवन्द; 'माल्वेसी')

"मारिसस का यह पौधा बागानोमें शोभा के लिये उगाता जाता है।

काष्टीय तना युक्त पौधा, पत्ते अंडाकार या लेन्स आकृति में, पर्णाग्रदीर्घ, पर्णाकिनारी करपती, दंतुरीत या कांगरादार। पुण्य लाल आकर्षक, एकाकी। फल गोल।

17. कालिस्टेमोन सिट्रीनूस (कर्टिस) स्कीलूस. (लाल बीटल ब्रश; 'मिर्टेसी')

ऑस्ट्रेलिया का यह पौधा भारत के बागानोमें शोभा के हेतु उगाया जाता है।

यह काष्टीय पौधा या छोटा पेड़ 5से. 8.5 मी. ऊॅंचाईवाला और अनेक झुकी हुई शाखा युक्त है। पत्ते सादे, एकांतरीत लेन्स आकारके रहते हैं। पुष्प लाल रंगके अत्यंत आकर्षक, शुकी पुष्पविन्यास में, बीटल-ब्रश जैसे झुके हुए रहते है।

18. बाउहिनीआ थेरीएगाटा लिन. (कचनार, कांचन, सोना; 'सिझालपिनीएसी')

बागानोमें शोभा के लिये उगाया जाता यह पेड़ करीब 15 मी. ऊँचा है। पत्ते अंडाकार, बीचमें 1/3 भागमें द्विभाजित। पुष्प सफेद या जांबली, कक्षीय या टोचमें, कलगी पुष्पविन्यासमें। फल रक्त-बदामी रंग के और बीज गोल, चपटे, बदामी रंगके होते हैं।

19. रिझालपिनीआ पुलचेरीमा लिन. स्व. (शंखासुर, जुलतुरा; "सिझालपिनीएसी")

दक्षिण अमेरिका का काष्टीय पौधा शोभा के लिये बागानोमें उगाया जाता है। पौधा 2-4 मी. ऊँचा,

पत्ते 6-8 जोड़ीमें दीर्घ लंबशील। पुष्प पीले या लाल रंग के, कलसी पुष्पविन्यास में; फल दीर्घ लंबगोल, चपटे, बीज 5-10।

20. डेलोनिक्स रिजीआ (बीज. एक्स. हक) राफ. (गुल-मोहर; 'सिझलपिनीएसी')

मादागास्कर का यह खुबसूरत पेड़ पूरे महाराष्ट्र राज्य में रस्तों की बाजू पर एवं बागानोमें उगाया जाता है। 10-15 मी ऊचाँईवाला पेड़ के पत्ते पिंच्छाकार, पर्णिकाएं 5-25 जोडीमें, दीर्घलंबगोल; पुष्प नांरगी–लाल रंग के कक्षीय या टोचमें, कलगी पुष्पविन्यासमें। फल चपटे, रेखाकार–दीर्घ लंबगोल, काष्टीय।

21. केन्ना इन्डिका लिन. (देबकेल करडाई; 'केन्नेसी')

बागानोमें शोभा के लिये उगाया जाता यह पौधा करीब 0.9-1.2 मी. ऊँचा, ग्रघील मूलतंत्र वाला रहता है। पत्ते बड़े, दीर्घलंबगोल; पुष्प ईट जैसे लाल रंगके या पीले; फल अंशतः गोल, त्रि-खंडीय; बीज काले, गोल।

22. पोलीएन्थीस टयुबरोसा लिन. (गुलछडी, निशिगंधा; 'अगापेसी')

बागानोमें शोभा के लिये उगाया जाता यह पौधा 60-100 से. मी. ऊँचा है। पत्ते त्रिजयावर्ती, तने के नीजे के हिस्से में रहते हैं। पुष्प सफेद सुगंधी, उच्चस्थ कलगी, पूष्प विन्यासमें रहते हैं। फल स्फोटी प्रकारके।

23. रोसा कानिना लिन. (डोग रोस, गुलाब; "रोसासी")

यूरेशिया एवं पश्चिम एशिया के बागानोमें शोभा के लिये उगाया जाता यह कंटीय ((कंटकीय) एवं आरोही काष्टीय पौधा है। पत्ते, अंडाकार या लंबगोल, करवती पर्ण किनारी वाले, सूक्ष्माग्रहैं। पुष्प सफेद या गुलाबी, एकाकी या 2-5 साथ में। फल गोलाकार लाल रंग के होते हैं।

24. रोसा इन्डीका लिन. (देशीगुलाब, रोसेसी)

भारत का यह कांटोवाला झाड़ीयुक्त पौधा है। पत्ते 3-7 पर्णिकावाला, लंबगोल, लेन्स जैसे। पुष्प लाल, एकाकी, आकर्षक।

25. टेकोमा स्टानस लिन. एच. बी. के. ('बिग्नोनिआसी')

ट्रापीकल दक्षिण अमेरिका का यह कष्टीय पौधा बागानों मे या खेतकी बरड़ के नाते उगाया जाता है। करीब 7 मी. ऊँचाई वाला यह छोटेसे पेड़ के पत्ते संमूख, पींचाकार, 5-11 पर्रिका वाला रहता है। पर्णिकाएं अंडाकार से लेन्स आकारकी होती हैं। पुष्प पीले, कलगी पुष्पविन्यासमें, गुच्छ में रहते हैं। फल स्फोटी, रेखाकार और बीज पक्ष्मींवाले रहते हैं।

26. प्लुमेरिआ रुब्रा लिन. (सफ़ेद चाफा/ चम्पा) "अपोसायनेसी"

ट्रापीकल अमेरीका का यह पौधा बागानों एवं मंदिरो के नजदीक उगाया जाता है, पेड़ 3-5 मी. ऊँचा, पत्ते एकांतरीत, दीर्घ लंबगोल से लेन्स, आकार के होते हैं। पुष्प सफेद या लाल रंग के, टोचमें, सदंडी गुच्छ में रहते हैं।

27. साल्वीआ विरीडीस लिन. (लीन.) बाट. एन्ड ट्रबुट--"लामिएसी"।

दक्षिण यूरोप का यह खुबसूरत पौधा उसके आकर्षक पुष्प के कारण महाराष्ट्र के बागानीमें उगाया जाता है।

इस रोमयुक्त पौधे के पत्ते अंडाकारसे दीर्घ लंबगोल, घट्ट रोमयुक्त रहते हैं। पुष्प 6, चक्रमें या कलगी पुष्प विन्यासमें, द्वि. ऑष्टाकार रहते हैं।

28. नेरीयम इन्डीकम मिल. (कनेर; 'अपोसायनेसी')

नेरीयम इन्डीकम मिल. (कनेर; 'अपोसायनेसी')

पश्चिम हिमालय एवं, नेपाल का यह पौधा बागानोमें शोभा के लिये उगाया जाता हैं। यह पौधाकरीव 4 मी. ऊँचा, काष्टीय है। पत्ते रेखाकार–लेन्स आकारमें चक्रीय रचनामें। पुस्प सफेद गुलावी, या लाल, सुगंधित, अग्रीय सीमित पुष्पविन्यासमें। फल लेन्स आकारमें, बीज रोमयुक्त।

29. युकेरीस ग्रान्डीफलोरा प्लेन्य एन्ड लिन्डेन ('अमारीलिडेसी')

"एमाझोन लिली" के नाम से प्रसिद्ध कोलिम्बीआ का यह पौधा बागानोमें आकर्षक व सुगंधित पुष्पों के लिये उगाया जाता है।

कंद युक्त पौधा, पत्ते 17-27 सें मी. लंबे, लंबगोल या अंडाकार, सुक्ष्माग्र, पुष्प सफेद 4-6, छत्रिल रचना में, लंबी पुष्प नलिका पर। फल गोलाकार से त्रिकोण--आकार मे।

30. ग्लोडिओलस लिन.('इरीडेसी')

पश्चिम व मध्य यूरोप, मध्य एशिया एवं खास करके ट्रोपकल व दक्षिण अफ्रिका के विविध रंगोवाली जातियाँ "पुष्पगुच्छ" की सजावट में खास करके उपयोग में ली जाती हैं।

इन ग्लेडिओलस के पौधे का तना शाकिय, करीब 12-15 लंबा, पत्ती भू-प्रसारी व स्तंभीय रहते हैं। पुष्प नलिकामय एवं नलिका "फनेल" (गिरनी) आकारमें, पंखडीयाँ संयुक्त, 6_खंडो वाली रहती हैं। प्रत्येक पुस्पमें पुंकेसर एवं स्त्रीकेसर तीन की संख्यामें और बीज गोलाकार रहते हैं। पंखड़ीयोका विविध रंगोमें खास करके सफेद, पीले या नारंगी-लाल रंगकी जातियों वाले पौधे जैसे ग्लेडीयोलस ट्रिस्टीस लिन। (सफेद, पीले पृष्प वाली जाति), ग्लेडिओलस अन्गुस्टस (लाल रंग के पुष्प वाली जाति) आदि उपयोगमें ली जाति है।

समुद्री शैवाल की उपयोगिता

आर के गुप्ता
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावडा

आज भारत की जनसंख्या 100 करोड़ पार कर चुकी है जनसंख्या की दृष्टि से भारत आज दूसरे स्थान पर पहुँच गया है। प्रतिवर्ष भारत की जनसंख्या में आस्ट्रेलिया की जनसंख्या जितने लोग जुडते चले जाते हैं। ऐसी बात नहीं है कि सिर्फ वृद्धि ही होती है प्रकृति अपनी तरह से संतुलन बनाए रखने के लिए सतत् प्रयास प्राकृतिक आपदाओं बाढ, भू-कंप, भू-खलन द्वारा करती है परंतु यह वृद्धि की तुलना मे अपेक्षाकृत कम हैं।

प्रतिवर्ष एक करोड़ अतिरिक्त लोगों के लिए अनाज मुहैया कराना आसान कार्य नही है। हमारे देश की वार्षिक उत्पादन क्षमता 1998-99 मे बीस करोड़ पचासि लाख चालीस हजार टन वार्षिक अनाज की थी है। आज जबकि उत्पादन के साधन सीमित है उस पर अतिरिक्त बोझ डालना विपरीत परिणाम दे सकता है। ऐसी स्थिति में लोगों का ध्यान खाद्योपयोगी शैवाल की ओर जाना स्वाभाविक है। ऐसे शैवाल अधिकांशतः समुद्री होते हैं। समुद्री शैवाल अपनी विविध उपयोगिताओं जैसे आहार , रासायन, औषधि एवं चारा के कारण महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। परंतु शैवाल सभी खाद्योपयोगी, रसायनोपयोगी एवं औषधियुक्त नहीं होते हैं। करीब एक हजार वर्ष पूर्व से आहारपूर्ति के लिए समुद्री शैवालों का प्रयोग चीन, जापान आदि देश मे ही रहा है। शैवाल की विशिष्ट उपयोगिता के कारण संसार के सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में इसका उपयोग आहार औषधि, चारा और रसायन की प्राप्ति के लिये शुरु हो गया है इसकी बढ़ती उपयोगिता और प्राकृतिक स्रोतों की घटती संपदा को देखते हुए यह जरूरी हो गया है कि इन शैवालों का संरक्षण और खेती की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। ऐसे में भारत जैसे विकासशील राष्ट्र का इस ओर ध्यान जाना स्वाभाविक हैं। हाँलाकि कि इसकी खेती चीन, जापान और फिलीपीन मे वृहत् पैमाने पर की जाती हैं।

भारत की समुद्री तट रेखा लगभग 7200 कि० मि० लंबी है। इन तटों पर समुद्री शैवाल की 650 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिसमें सबसे अधिक 320 रोडोकाइटा, 165 क्लोरोफाइटा और 150 कीओंफाइटा की है। राज्य की दृष्टि से तमिलनाडु, गुजरात और महाराष्ट्र क्रमशः पहले दूसरे और तीसरे स्थान पर हैं।

समुद्री शैवाल की कुछ प्रजातियाँ कौलेरपा,अल्वा केसिप्टा अल्वा लैकटुका, एन्टेरीमोरका, मोनोस्ट्रोका, सारगैसम, पोरीफाइरा

विपननामैनसिस, ग्रेसिलेरिया, एकेन्थोफ्रेरा स्पासीफैरा, कोडियम मुख्यतः खाने के काम में आती हैं। इनके विटामिन A, B,B-12,प्रोटीन, वसा, फाइब्रस, कैलसियम, फास्फोरस, आयरन, सोडियम, पोटेशियम, जैसे पीषक तत्व पाए जाते हैं। पौरफाइरा में प्रोटीन और विटामिन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। लगभग 100 ग्राम शैवाल खाने से सोडियम,पोटेशियम और मैग्नेशियम की सभी जरूरतें पूरी हो जाती है। ये शैवाल कच्चा, उबालकर, पकाकर, सलाद के रूप मे, सब्जी, चाय या अचार की तरह जेली, पुडींग, केन्डी, केक तथा टोस्ट मे खाए जाते है। इनका उपयोग मसाला, सीजनिंग और रेलिशिंग के लिए भी होता है।

तालिका – 1 : समुद्री शैवाल खाद्य के रूप में।

शैवाल	खाने का तरीका
1 एस्पैरोगोपसिस टेक्सीफॅर्सिस	पकाकर,सलाद
2. कौलरपा रेसीमोसा	कच्चा या सलाद
3. कीटोमोर्फा क्रासा	पकाकर या सलाद
4. ईन्ड्रोमार्फा क्लेथेरेटो	पकाकर या सलाद
5. ईन्ट्रोमार्का कम्प्रेसा	कच्चा सलाद
6. ईन्ट्रोमार्काईन्टेस्टाईनेलिस	कच्चा, टोस्ट
7. ईन्ट्रोमार्का प्रोलीजेरा	कच्चा, टोस्ट, मसाले की तरह
8. ईन्ट्रोमार्का लिन्जा	मसाले कर तरह
9. गोसीलोम्पा वेरूकोसा	कच्चा, पकाकर
10. अल्वा लैक्टुका	सूप, सलाद, चाय

विश्व में समुद्री शैवाल का उत्पादन 6,500,000 टन (गीला) प्रति वर्ष है। भारत के पूर्व और पश्चिमी तट पर इसकी पैदावार 70,000 टन प्रति वर्ष है। यह विश्व उत्पादन का सिर्फ 1.09 % है। कच्छ की खाड़ी उत्पादन की दृष्टि से पहले और तमिलनाडु दूसरे स्थान पर है। भारत में एन्ट्रोमार्का कलेकसुओम्फा और अल्षा लैक्टुका की खेती का प्रयास स्वातिप्रग्य का और कृत्रिम जाल द्वारा ओखा सौराष्ट्र तट पर किया जाता हैं। अनुमान है कि एक वर्ष मे 1.9 टन सूखा शैवाल प्रति हेक्टयर पैदा किया जा सकता है। खेती की अन्य पद्धति में समुद्र के बाहर पौधों को टंकी या हौज में संवधिति किया जाता है इस विधि में एन्ट्रोमोर्फा को नायलोन के धागे पर समुद्र के बाहर भूमिगत हौजों में उगाया जाता है। पानी में उर्वरक डाला जाता है और पानी का तापक्रम 17 से 32 से. ग्रेड तक नियंत्रित किया जाता है। इस विधि द्वारा साल में 9 से 10 बार फसल काटी जा सकती है और तकरीबन 12.38 मैट्रिक टन सूखा शैवाल प्रति वर्ष प्रति हेक्टर पैदा किया जा सकता है। अल्वा केसियाटा की खेती की ओखा के समुद्र में की जाती है।

भारत में जापान से लाये गये इक्लोनिया की ओखा तट पर उगाने का प्रयास किया गया है ये समुद्र की 10 मीटर गहराई में शीत ऋतु मे लगाए जा सकते हैं।

भूरी शैवाल में मुख्यतः सारगैसम, टर्बिनेरिया सिस्टोसायरा, होरमोकाईसा आदि है जो ज्यादातर ऐल्जिनिक एसिड और एल्जीनेट बनाने के काम में आते हैं। भारत में सारगेसम की 46% जातियाँ पायी जाती है

जिसका गीला वजन 25800 टन है। इससे करीब 450 टन प्रतिवर्ष एल्जिनिक एसीड और एल्जीनेट बनाए जाते हैं।

अधिक रूप से उपयोगी लाल शैवालों में ग्रेसिलारिया, जिलेडियम गिलिडियाला है जिससे अगर-अगर बनाया जाता है। प्रकृति में ईसकी कुल मात्रा 4900 (गीला) टन है। यह शैवाल सर्वदेशीय है। इनकी खेती और अध्ययन का प्रयास गुजरात और तमिलनाडु तट पर किया जा रहा है।

ग्रेसीलेरिया युडिलिस की खेती का प्रयास गुजरात और तमिलनाडु तट पर खंडीय पद्धति द्वारा सफल रहा हैं। तमिंलनाडु के मंडपम तट पर प्रतिवर्ष 3.5 कि. ग्राम गीला प्रतिमीटर रस्सी की लबांई पर पैदावार हो सकती है। यह अनुमान है कि ग्रेसिलेरिया युडिटिस की मात्रा 40 टन गीला प्रति 2 हेक्टर क्षेत्रफल से 2 वर्ष में पैदा किया जा सकता है। चीन में रेफट विधि द्वारा भी शैवाल की खेती होती है लेकिन यह पद्धति हमारे देश में प्रचलित नही हैं।

हिपनिया और युकुमा केरागिनान के अरधे स्रोत हैं। भारत में हि.म्यूसीफार्मिस और हि. वेलेनशीयाई का जीवनचक्रका अध्ययन गुजरात और तमिलनाडु के तट पर क्रिया गया है। हि. म्यूसीफार्मिस की खेती खंडीय भाग में रस्सी की तहीं में डालकर और तस्थर तंत्र द्वारा दरिया के उपतटवर्ती भागों में की गई है। अगस्त सितम्वर माह में मात्र 25 दिन में शैवाल की वृद्धि चौगुनी हो जाती है।

हाल ही में युक्लमा स्ट्रायटम की औखा तट के बाहर हौजों में लगाने का प्रयास किया गया है/ दरिया में प्रतिदिन इसकी 2.5 से 4% वृद्धि होते है। दिसम्बर से मार्च तक 4 से 7% तक वृद्धि पायी गयी हैं। यह हौजों में लगभग साल भर उगाया जा सकता हैं।

पोरफायरा ठंडे से लेकर उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले शैवाल हैं। इसमें विटामिन A, B, B_{12}, C की मात्रा अन्य शैवाल की तुलना में 4 से 10 गुना अधिक होती हैं। एमिनो एसिड, ग्लूमेटिक एसीड, एलेनिन, टावरिन और न्यूक्लिक एसीड की मात्रा अधिक होने के साथ ही इसमें कोलेस्ट्रोल को कम करने की भी क्षमता हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से एक बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि समुद्री शैवाल की खेती और उनके जीवन पर आधारित है। इसकी खेती और विकास के लिए इनका जीवन चक्रका ज्ञान अनिवार्य हैं।

भविष्य उज्ज्वल है लेकिन तटीय निवासियों की शैवाल की उपयोगिता की कम जानकारी के कारण यह अभी बहुत प्रचलित नही हैं। यदि लोगों की इसकी उपयोगिता के बारे में जागरूक किया जाय तो इससे न केवल तटीय निवासी की रोजगार मिलेगा बल्कि आर्थिक स्तर भी ऊँचा उठेगा।

''शैवलम् तुवरम् तिक्तम् मधुरम् शीतलम् लघु।

स्निग्धम् दाह तृषा पित्त रक्तज्वार हरम् परम्''॥

पर्यावरण

आर. के गुप्ता एवं एस. एस. महापात्रा
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

मानव के चारों ओर फैले हुआ भौतिक जगत का जो आवरण है वही पर्यावरण है। सरल शब्दों में पयावरण उन सभी परिस्थितियों का योग है जो मानव की प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।

पृथ्वी पर मानव जीवन का प्रारम्भ ढ़ाई करोड वर्ष पूर्व हुआ। उस समय प्रकृति से उसे जो उपहार स्वरूप मिला उसने उसका सदुपयोग किया। धीरे धीरे मानव सभ्यता विकसित हुई साथ ही साथ जनसंख्या में भी दिनोंदिन वृद्धि होती चली गई। इस कारण कभी विकास के नाम पर तो कभी जनसंख्या के आवास के नाम पर प्रकृति से छेड़-छाड शुरु हुई और साथ ही शुरू हुई प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रक्रिया। प्राकृतिक संपदाओं के अधिकाधिक शीतल और असंतुलिन व अनियमित व्यवस्था के कारण पर्यावरण तो संकट में आया ही साथ ही मनुष्य और अन्य जीव-धारियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया। अपने पूर्वजों की सीख ''अति सर्वत्र वर्जयेत'' को हम भुला बैठे।

आज मनुष्य को सबसे ज्यादा जरूरत है पर्यावरण के प्रति जागरूकता की और यह जानने की जरूरत है कि कैसे पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग लम्बे समय तक किया जाय तथा पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बीच सन्तुलन बना रहे।

पर्यावरण से जुड़ी जो समस्याएं उभर कर समने आई हैं उनमें मुख्य हैं :— पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, ओजोन पर्त का भीनापन, अम्ल वर्षा, बाढ़, सूखा, भूमि कटाव, हवा, जल, मिट्टी, प्रदूषण व लुप्त होते वन्य जीव तथा पौधों की जातियां।

पर्यावरण को हानि पहुँचने का मुख्य कारण है वनों का विनाश और इसके मूल में है तेजी से वढ़ती आबादी। आज भारत की आबादी अरब की संख्या को छूने वाली है। इस वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है।

द्रुतगति से बढ़ती आबादी की आवासिक सुविधा प्रदान करने के लिए जंगल कटे तो औद्योगीकरण के लिये भी जंगलों का विनाश हुआ। विश्वस्तर पर देखें तो प्रतिवर्ष 17 मिलियन हेक्टेयर जंगलों का सफाई हो रहा है। भारत में यह प्रतिशत 1-3 से 1-5 मिलियन हैक्टेयर के बीच है। हमारी वन नीति के अनुसार देश का 33 प्रतिशत भाग वनाच्छादित होना चाहिये पर यह आज केवल 19.47 प्रतिशत है। इससे पर्यावरण के साथ-साथ देश की समृद्ध जैव विविधता भी प्रभावित हुई हैं।

हमारे देश में आवृत बीजी पौधों की लगभग 17500, शैवालों की 6500, ककूदों की 14500,

शैवाकों की 1600, हरितोद्भिदों की 2664, पर्णागों की 1022 अनावृतबीजों पौधों की 64 जातियां तथा जन्तुओं में मत्सयों की 2546, उभयचरों की 205, सरीसृपों की 456, पक्षियों की 1228, स्तनधारियों की 372, कीटों की 60000, मालस्का की 5050 तथा जीवाणुओं की 850 जातियाँ पाई जाती हैं।

वनो के विनाश से कुछ वन्य-जीव प्राकृतिक आवास नष्ट होने के कारण स्वतः विलुप्त हो गए, कुछ लुप्तावस्था की स्थिति में पहुंच गए तो कुछ शहरों की और पलायन कर गए जहां षे मारे गए। भारतीय प्राणी सर्वेक्षण के अनुसार (1871) 75000 प्राणियों की जातियों में से स्तनधारियों की 79 जातियाँ, पक्षियों की 44 जातियाँ, सरीसृपों की 15 जातियां एवं उभयचरों की 3 जातियाँ लुप्त हो गई है। वनस्पतियों मे यह संख्या कही अधिक हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (1980) के अनुसार पौधों की लगभग 1500 जातियाँ लुप्त हो चूकी हैं।

बढ़ती जनसंख्या के पोषण के लिये अधिक अन्न उपजानें की प्रक्रिया में उर्वरकों व कीटनाशकों का अधिकाधिक प्रयोग किया गया जिसके कारण धीरे धीरे मिट्टी प्रदूषित होती गई और उसकी उर्वरा शक्ति में कमी जाती गई, जल श्रोत भी वन विनाश के दुष्परिणामों से अछूते नहीं रहे। कई प्राकृतिक श्रोत सूख गए, कुछ को औद्योगिक प्रदूषण ने अपनी चपेट में ले लिया और कुछ का जल मानव जनित कारणों से अखाद्य हो गया। श्रीनगर की डल झील इसका ज्वलंत उदाहरण है।

मुख्य प्रश्न है पर्यावरण सुधार कैसे हो? आज आवश्यकता है बड़े पैमानेपर वृक्षारोपण को और वनो को पुनःउद्धार की। यद्यपि सरकार इस दिशा में प्रयासरत हैं तथापि जन-गन की भागीदारी इसमें आवश्यक हैं। वृक्षारोपण के लिये उन जातियों को चुनना होगा, जो वायुशोधक या प्रदूषण अवशोषक हैं। इसमें मुख्य है :– सिरिल (अल्बीजिया लेबेक), सप्तपर्णी (एलस्टोनिया स्कोलेरिस), नीम (अजापिरेक्टा इंडिका), मौलसिरी (मियुसोप्लस इलेंगी), अर्जुन (टर्मिनेलिया अर्जुना), पीपल (फाईकस रेलिजियोसा) आदि। मैंग (टेरोस्पर्मम एसरीफोलियम), सप्तपर्णी, पलाश या ढ़ाक ('पूटिया मोनोसकर्पमा), नीम भंडार (इरीफ्राइना वेरीगेटा), इमली (टेमेरिंडल इंडिका), अर्जुज आदि वृक्ष तो ध्वनि प्रदुषण रोकने में भी सहायक माने गये है।

वनो के प्राकृतिक रूप से पुनर्जनन हो, इस और ध्यान देना होगा। ग्रामवासियों को वनों का महत्व समझाने की आवश्यकता है। उनके दिन प्रति दिन के उपयोग में आने वाली जातियों पर विशेष ध्यान देना होगा। वन सम्पदा के उपयोग तथा संरक्षण और पर्यावरण स्वच्छ, स्वस्थ रखने पर ध्यान केन्द्रित करना होगा, तभी भावी पीढ़ी को स्वस्थ पर्यावरण एवं जीवन यापन हेतु आवश्यक सुविधायें मिल पायेंगी।

नन्दा देवी राज जात पद यात्रा - २०००
(धार्मिक एवं वानस्पतिक दृष्टिकोण)

हरीश सिंह 'भुजवान'
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

उत्तरांचल राज्य में प्रत्येक बारह वर्ष बाद आयोजित होने वाली नन्दादेवी राज जात यात्रा एशिया की सबसे लम्वी धार्मिक पद यात्रा मानी जाती हैं जिसमे चमोली गढवाल की सबसे ऊंची पर्वत चोटी त्रिशूल की 280 कि० मि० की परिक्रमा हेतु नौटी गाँव से होमकुण्ड व वापसी की कठिनतम पैदल यात्रा की जाती है। धार्मिक मान्यता के अनुसार पर्वत पुत्री गौरा देवी (नन्दादेवी) उत्तराखण्ड की बेटी मानी जाती हैं जिनका विवाह कैलाशपति भगवान शिव से हुआ था। भादो मास के कृष्ण पक्ष में नन्दा देवी अपने मायके उत्तरांचल आती हैं और इस पर्व को यहाँ के निवासी 'नन्दा अष्टमी' के नाम से मनाते हैं। इस उत्सव के पश्चात् नन्दा देवी को अश्रुपूरित विदाई देकर ससुराल (कैलाश) भेजने जाने की यात्रा को ही नन्दा देवी राज जात यात्रा के नाम से जाना जाता है। यूँ तो छोटी जात यात्रा का आयोजन वेदिनी तक हर वर्ष होता है किन्तु प्रत्येक 12 वर्ष बाद इस क्षेत्र में एक चार सींग वाला मेंढे (इचस)के जन्म होने पर ही बड़ी राज जात यात्रा का आयोजन किया जाता है। यही चौसिंगा मेढा इस पूरी यात्रा के मार्ग का पथ प्रदर्शन कराता हैं। नन्दा देवी की दुल्हन जैसी सजी-सँवरी डोली के साथ अन्य देवताओं के निशान व रिगांल (अरुन्डिनेरिया स्पी०) से बना छाता (द्वंतोली) भी इस यात्रा में ले जाया जाता है, एक अन्य मत के अनुसार इस यात्रा की शुरुआत चाँदपुर (गढवाल) के राजा अजयपाल ने सर्वप्रथम 15 वी सदी में की थी। तब से राज परिवार के लोग अपने पित्तरों को तर्पण देने व नन्दा देवी से आशीर्वाद ग्रहण करने हेतु इस यात्रा का आयोजन हैं।

नन्दा देवी राज जात यात्रा-2000 में मुझे भी शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस कठिन यात्रा के बारे में बचपन से ही अपने बुजुर्गों से सूनते आरहा था। इस वर्ष 21 अगस्त को गढवाल के राजवंशी कुँवर कँासुवा गाँव से चार सिंग वाले मेंढे पवित्र द्वंतोली लेकर नन्दा देवी सिद्धपीठ नौटी गाँव पंहुचे। और 22 अगस्त की प्रातः पवित्र द्वंतोली पर देवी की प्राण प्रतिष्ठा करने के उपरान्त दिन के 12.30 यात्रा का शुभारम्भ कर ईडा वधाणी (10 कि०मी०) पँहुचे इस प्रकार 23 अगस्त को पुनः नौटी (10 की० मी०), 24 अगस्त को कांसुवा (10 कि०मी०) 25 अगस्त को सेम (10 कि० मी०), 26 अगस्त को कोटी (10 कि० मी०), 27 अगस्त को भगोटी (12 कि० मी०), 28 अगस्त को कुलसारी (12 कि० मी०), 29 अगस्त को चेपडियूं (10 कि० मी०) और 30 अगस्त को नन्द केसरी (5 कि० मी०)तक की यात्रा हो चुकी थी। 31 अगस्त की

प्रातः मैं अपने मित्रों के साथ अल्मोड़ा जिले के रानीखेत से मूसलाधार वर्षा मेंबस द्वारा कौसानी होते हुए ग्वालदम पहुँचे, मुख्य मार्ग बरसात के कारण टूटने की वजह से वन विभाग की कच्ची सड़क द्वारा नन्दकेशरी पँहुचे तो पता चला कि देवी की डोलियाँ कुछ ही देर पहले अगले पड़ाव फल्दियागाँव (10 कि० मी०) को प्रस्थान कर गयी है। हम लोग वहाँ से एक बस पकड़ कर देवाल आ गये। वहाँ पर होटेलों में अत्यधिक भीड़-भाड़ देखते हुये हमने आगे बढना ही उचित समझा। किसी तरह एक जीप में मूसलधार बारिस मे कीचड़ भरी कच्ची सड़क में धक्के खाते हुए रात के आठ बजे मुन्दोली (1430 मी०) पँहुचे,वहाँ दुकान के स्टोर में रात गुजारी। 1 सितम्बर 2000 की सुबह एक नेपाली पोर्टर (भारक) व अन्य इन्तजाम कर वहाँ से 3 कि० मी० खड़ी चढाई से यात्रा का शुभारम्भ कर हम 2100 मीटर ऊचाई पर स्थित लोहाजंग (ल्वजंग) पहुँचे। वहाँ जिला प्रशासन व पर्यटन विभाग द्वारा प्रायोजित शिविर में आगे की यात्रा हेतु पंजिकरण व चिकित्सा परीक्षण करा प्रमाण पत्र प्राप्त किये।

अगले दिन (2 सितम्वर) के प्रातः ही अपने तम्बू व समान समेटकर बात्क बुरांश, चूक व सुरई के जंगलो व गघेंरों के कल-कल की आवाज के साथ साथ आगे उतराई चढ़ाई पार करते हुए हम 14 कि० मी० दूर वाण गाँव (2400 मी०) पँहुचे। हमारे पीछे-पीछे देवी की डोलियाँ भी विभिन्न क्षेत्रों से वाण गाँव पंहुची, यहाँ पर सभी देवी देवताओं के अवतारों (पश्वा) का मिलन हुआ। इस यात्रा में यह गाँव अन्तिम रिहायशी पड़ाव था। इस वर्ष के यात्रा में कई चार सिंग के मेढे देखे गये जैसा कि पूर्व में नही होता था। 3 सितम्बर की सुबह लाटू देवता के दर्शन करबरसात में भीगते हुए यात्री आगे बढ़े। लाटू देवता का यह मन्दिर राजजात होने पर ही 12 वर्ष में खुलता है और यहाँ से आगे की यात्रा की अगुवाई भी लाटू ही करता है। हम लोग आगे बढ़ते हुए रणक्धार पँहुचे । यहाँ से वेदिनी की ओर जाने वाली 6 से 8 कि० मी० लम्बी यात्रियों की कतार स्पष्ट दिख रही थी। यहाँ से नील गंगा तक उतार था। जिसे पार करते ही देवदार, चीड, सुरई व बाझ के जंगलों वाली चढ़ाई से होते हुए 10 कि० मी० दूर यात्रा के अगले पड़ाव गैरोली पाताल पँहुचे जो तालिश पत्र व सफेद बुरांश के जंगल से घिरा एक 500 मीटर चौड़ा मैदान है जिसे पार कर विनायक पहुचे। जहाँ के मखमली घासदार बुग्याल ने हमारा स्वागत किया। यहाँ से आगे बढ़ते हुए सांय के चार बजे हम वेदिनी बुग्याल (3554 मी०) पंहुचे जहाँ रात्रि कापड़ाव था।

अगले दिन 4 सितम्वर सुबह मौसम साफ होने के कारण सामने त्रिशूल, उधर नन्दाघूंघटी, दूर नीलकंठ, चोखम्वा और अनेक पर्वत शृखलाये स्पष्ट दिखाई दे रही थी। हम लोग सामान समेट कर वेदिनी से आगे बढे। अणवलधार (3840 मी०) पहुँचकर कुछ विश्राम के बाद फिर आगे बढ़े तो देखा कि रास्ते के ऊपर नीचे हजारों लोग डोलू (रियोम इमोडी) की जड़ खोद रहे थे।मेरे जैसे क ई वनस्पति प्रेमी इस अमूल्य जड़ी-बूटी को न खोदने की सलाह दे रहे थे। आगे चलते हुए कुछ बड़े-वड़े शिलाखण्ड से परिपूर्ण पातरनचौणी (3550 मी०) पँहुचे जो यात्रा का–चौदहवाँ पड़ाव था। कहते हैं कि कनौज के राजा जसधवल ने यहाँ पर पातर

(नर्तकियां) नचाई थी, नन्दा जी के श्राप से वे पत्थर बन गयी। हल्की बारिस शुरु हो चुकी थी, चढ़ाई पार कर घने कुहरे में कैलू विनायक (4100 मी०) पंहुचे। आगे बढ़ते रहने पर कई पत्थरों की गुफा में यात्री शरण लिए हुए दिखे शायद यही जगह बगुवा बासा (4400 मी०) होगी। कंही भी टेन्ट लगाने की जगह न पाकर कुछ ही आगे बढ़े तो ब्रह्मकमल से आच्छादित सुन्दर स्थल दिखा, वंही टेन्ट लगाकर रात्रि विश्राम किया।

5 सितम्बर की सुबह लम्बी कतार में शामिल होकर संकरे व विकट रास्ते से एक-एक इन्च कर आगे बढ़ते रहे, चढ़ाई का रास्ता था। रूपकुण्ड पंहुचना अदभुत रोमांच मिश्रित था। एक छोटा सा शान्त झील, जिसके चारो ओर मानव कंकाल व खोपडियां विखरी थी। ऐसा माना जाता है कि पातर नचौणी में पातरो को पत्थर बनाने के बावजूद भी कुछ औरतें छुपते हुए राजा की यात्रा में आगे बढ़ती रही और यहाँ पर नन्दा के श्राप से वे मर गयी। कुछ लोग इसे नन्दा जात के दौरान किसी भयंकर दुर्घटना का परिणाम मानते है तो कुछ इसे सन् 1841 में डोगरा जनरल जोरावर सिंह की सेना जम्मू से तिब्बत जाते समय बर्फिली हवा के कारण हुए मौत से जोड़ते हैं। जो भी हो, 1958 में इन कंकालो की कार्बन डेटिगकरने पर पाया कि ये कंकाल 500 से 800 वर्ष पुराने हैं। कुछ देर यहाँ पर रूकने के बाद ज्यूंरागली की खड़ी चढ़ाई पर आगे बढे। यह गली इस यात्रा की सबसे ऊँची (5665 मी) यानी 17,500 फीट) व खतरनाक प्वाइन्ट मानी जाती है। ज्यूंरागली को यमराज की गली कहा जाता है। थकाऊ चढ़ाई, सीढीयों की तरह तंग मार्ग और नीचे खाई मे देखने पर कंकाल से पटा रूपकुण्ड दिखाई दे रहा था। जरा सी असावधानी पर सीधे कंकालो के बीच पंहुचने का खतरा मंडरा रहा था। इस गली को पार करने वाले यात्री अपने को मौत के मुँह से बचे हुए सोच रहे थे। ऊपर चोटी पर पहुचने के बाद इस पहाड़ के दूसरी ओर एकदम पथरीला उतार था, घास की जड़ पकड कर एक के पीछे एक यात्री उतर रहे थे। पाँच-सात कि० मी० लम्वी उतार के बाद एक चौड़ी घाटी शिला समुद्र (3800 मी०) पंहुचे जो जात यात्रा का पन्द्रहवां पहाड़ था।

यहाँ पर एक विशाल पत्थर की गुफा में नन्दा जी की डोलियां व पुजारीलोग आराम कर रहे थे। शाम को देवी आरती में सम्मिलित होने के पश्चात विश्राम किया।

6 सितम्वर की सुबह देवी की डोलियों ने नीचे को कूच की, पीछे-पीछे हम लोग भी चले, सामने आधा कि०मी० से अधिक चौडा पत्थरो का समुद्र था उसी की वजह से इसका नाम शिला समुद्र पड़ा होगा। आगे बढ़ते हुये धुन्ध में सामने मन्दाकीनी नदी के किनारे पूजा होते देख सोचा कि यही होमकुण्ड होगा। परन्तु लोग ऊपर की ओर तेजी से बढ़ रहे थे। यहाँ से आगे जूता पहनकर जाने की इजाजत न मिलने पर नंगे पॉय ही कंकड-पत्थरो पर 2-3 कि०मी० चलते हुए होमकुण्ड पंहुचे। यहॉ पर पूजा पाठ व अन्तिम जात कर्म सम्पन्न हुआ। सभी यात्रियों को वापस जाने हेतु निर्देश दिया गया। चौसिंगा मेढे को ऊपर की ओर बढाने का प्रयास किया जा रहा था। किन्तु इतने दिनों तक मनुष्यों के साथ रहने के बाद मेढा ऊपर कैलाश जाने में आनाकानी कर रहा

था। पूर्व में मेंढा स्वतः ही कैलाश की ओर चला जाता था, ऐसी धारणा थी। वापसी मे अपने साथियों से मिलकर 3-4 कि०मी० दूर रखे समान लेकर नदी की ओर उतरे। नदी उफान ले रही थी, 4-5 फिट तक पानी था, जिसे रस्से के सहारे पार कर अगले पड़ाव चन्दनिया घट (3870 मी०) पंहुचे। किन्तु लगातार बारिस व रूकने का उचित स्थान न पाकर नीचे की ओर चलते गये।

अन्ततः 8 बजे जंगल के बीच में एक खुली जगह 'लाटा खोपड़ी' पंहुचो चारो तरफ घुप्प अंधेरा था। जगह-जगह पर लोग पेड़ के नीचे आग जलाये हुए थे। हमने आई०टी०बी०पी० के जवानो के टेन्ट में पानी में बैठकर रात काटी। यह सुनकर कि पीछे पत्थर गिरने से छः - सात यात्री मर गये है सभी डरे हुये थे। रात भर वारिस होती रही। सुबह उठकर फिर रिगांल के जंगलो में आगे बढे। कपड़ों व सामान का वजन बारिस में भीगकर दुगूना हो चुका था। 3 कि०मी० आगे पहुँचकर तातड़ा नामक स्थान पर पंहुचे । वही पर आग जलावर कपड़े सुखाये व रात्रि विश्राम किया। 8 सितम्बर को तातड़ा से चलकर सुतोल गाँव, सितोल होते हुए 29 कि०मी० दूर घाट पॅहुचे। दूसरे दिन नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग, आदिवद्री, द्वारहाट होते हुए बस द्वारा वापस रानीखेत पँहुच गये।

उक्त यात्रा मेरे लिए धार्मिक विश्वास के साथ-साथ वानस्पतिक अध्ययन का भी एक उत्तम अवसर था। इस यात्रा के दौरान रास्ते के चारो ओर के प्रमुख वनस्पतियों की पहचान, यात्रियों द्वारा उनके दोहन व उनके दुष्परिणामों के बारे में अपनी डायरी लिखने की कोशिश करता रहा। मुन्दोली से लोहाजंग के बीच बाझ (क्वीरकस स्पी०) तथा लोहाजंग से वान के बीच बाँझ, खरसू (क्वीरकस स्पी०), तालिश पत्र (टैक्सस स्पी०), बुॅरास (रोडाडेन्डोन स्पी०) मुख्य रूप से मिल रहे थे, वाण से विनायक के बीच प्रमुखतः बाँझ, बुँरास (सफेद) व शकुंधारी जातियाँ जॉसे देवदार, सुरई, चीड़, सवा आदि दिख रहे थे। विनायक से पूरे वेदिनी बुग्याल में फ्रेगेरिया स्पी०, पोलीगोनम स्पी०, डोलू (रियूम स्पी०), कटूकी (पिक्रोराइजा स्पी०), आदि मुख्यतः देखी गयी। वेदिनी से बगुवावासा के बीच भी टांटर (रियूम स्पी०), बज्रदन्ती (पोटेन्टिला स्पी०), निविर्षी (एनीमोन स्पी०), आदि प्रमुखता से पायी गयी। बगुवावासामें ब्रह्मकमल (स्पुरिया ओवेलाटा), फेन कमल (ससुरिया गौसीफलोरा), मांसी (नारडोस्टेचिस जटामाँसी), मुख्य रूप से फैली हुई थी। ज्युरागली से होमकुण्ड के बीच मुख्यतः टांटरा, गोकुल (कोमीफेरा स्पी०), माँसी, कटुकी, फेनकमल, भूतकेश (कोरिडेलिस स्पी०), छत्रक (हेराकुलम स्पी०), अतीस (एकोनिटम स्पी०), हत्था जड़ी (ओरकिस स्पी०), टगर (सेलिनियम स्पी०) बज्रदन्ती (पोटोन्टिला स्पी०),आदि मिल रहे थे। चन्दनिया घट व लाटा खोपड़ी के बीच भोजपत्र (बीटूला यूटिलिस), तालिश पम (टैक्सस बकाटा), सफेद बुराँस (रोंडोडेन्ड्रोन स्पी०), तथा रिंगाल (अरुन्डिनेरिया स्पी०) व तातड़ा से सुतोल के बीच चूक (हिप्पोफी स्पी०) मुख्यः रूप से दिख रहे थे।

इस यात्रा के दौरान मेरे अनुमान से सबसे अधिक दोहन रिंगाल (अरुन्डिनेरिया स्पी०) का किया

गया क्योंकि यात्रा कर रहे लगभग 25,000 यात्रियों ने चढाई में सहारे हेतु इसी के डंडे का प्रयोग किया था। इसके अतिरिक्त 50 प्रतिशत यात्रियोंद्वारा रात्रि विश्राम के दौरान पालीशीट के तम्बू का ढाँचा भी इसी रिगांल द्वारा तैयार किया जाता था।रिगांल के सूखे डंडो को आग जल्दी पकड़ने के कारण इसे कई कुन्तलों में जलाया गया। बगुवा बासा में ब्रह्मकमल व फेनकमल के पौधों का विदोहन यात्रियों द्वारा देवी के प्रसाद के रूप में अपने क्षेत्र में ले जाने हेतु निर्ममता से किया गया। वेदिनी व अणवल धार के बीच स्थिति बहुत दयनीय थी। हजारों यात्री रास्ते के ऊपर नीचे उग रहे डोलू नामक औषधीय पौधे की जड़ को धडल्ले से उखाड़े जा रहे थे। ऐसे ही शीला समुद्र में यात्रियों द्वारा गुगुल, माँसी, टगर, अतीस, कटुकी, बज्रदन्ती, फेनकमल, भूतकेश आदि के साथ किया जा रहा था। मैने कुछ यात्रियों को ऐसा न करने की सलाह देते हुए पूछा कि इन सबका आप लोग क्या करेगें? तो अधिकतर लोगों ने इनकी उपयोगिता को न जानते हुए भी सिर्फ दूसरों को उखाड़ते देख ऐसा किया था। चन्दनिया घट व तातड़ा के बीच लोगों द्वारा भोजपत्र (बिटूला यूटिलिस) के तनों की छालों का दोहन करते हुए भी देखा गया। रिहायसी इलाकों में ऊपर से लाये गये ब्रह्मकमल व फैनकमल को कुछ लोगों द्वारा बेचते हुए भी देखा गया। हजारों यात्रियों द्वारा चलने व रात्रि विश्राम करने मात्र से ही बुग्यालो में उग रही मखमली घास, लहलहाते छोटे पौधे व रंग बिरगें फूलों को रौंदने का दृश्य तो ओर भी पीड़ाकारक था।

पर्यावरण प्रदूषण की ओर दृष्टि डालने पर मैने पाया कि इस यात्रा के हर पड़ाव पर 25 हजार से अधिक यात्रियों द्वारा मात्र शौच करने से ही ये जगह कम से कम 2-3 माह तक के लिए प्रदूषित हो गई थी। नदियों व गधेरों के किनारे गन्दगी से पट गये थे। अधिकतर यात्री अपने साथ ले गये प्लास्टिक की बोतल, थैलिया व शीट तथा अन्य पैकिंग सामग्री को उपयोग के बाद वंही फेंक रहे थे। इस यात्रा में जगह-जगह पर यात्रियों के कपड़े, जूते आदि को भी बिखरे हुए देखा गया। ध्वनि प्रदूषण की ओर नजर डालने पर पाया कि वेदिनी तक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होने के कारण लाउड स्पीकर, जनरेटर व उसके बाद टेप व रेडियो का शोर वहाँ की शान्त वादियों को विचलित कर एवलांच को भी बढ़ावा दे रहे थे। मिट्टी का तेल, डीजल व पेट्रोल, एल्कोहल जैसी वस्तुओं का खुलकर उपयोग भी इस यात्रा के दौरान देखा गया। विभिन्न स्थलों पर खुले अस्थाई होटल, जंगल में जलाई आग के कारण हुआ धुआं भी पर्यावरण को बिगाड़ने में सहयोग कर रहा था। जिला प्रशासन द्वारा यात्रा के लिये काटे गये रास्तों व पगडंडियों के कारण भी यहॉ के पर्यावरण को कम नुकसान नही हुआ था।

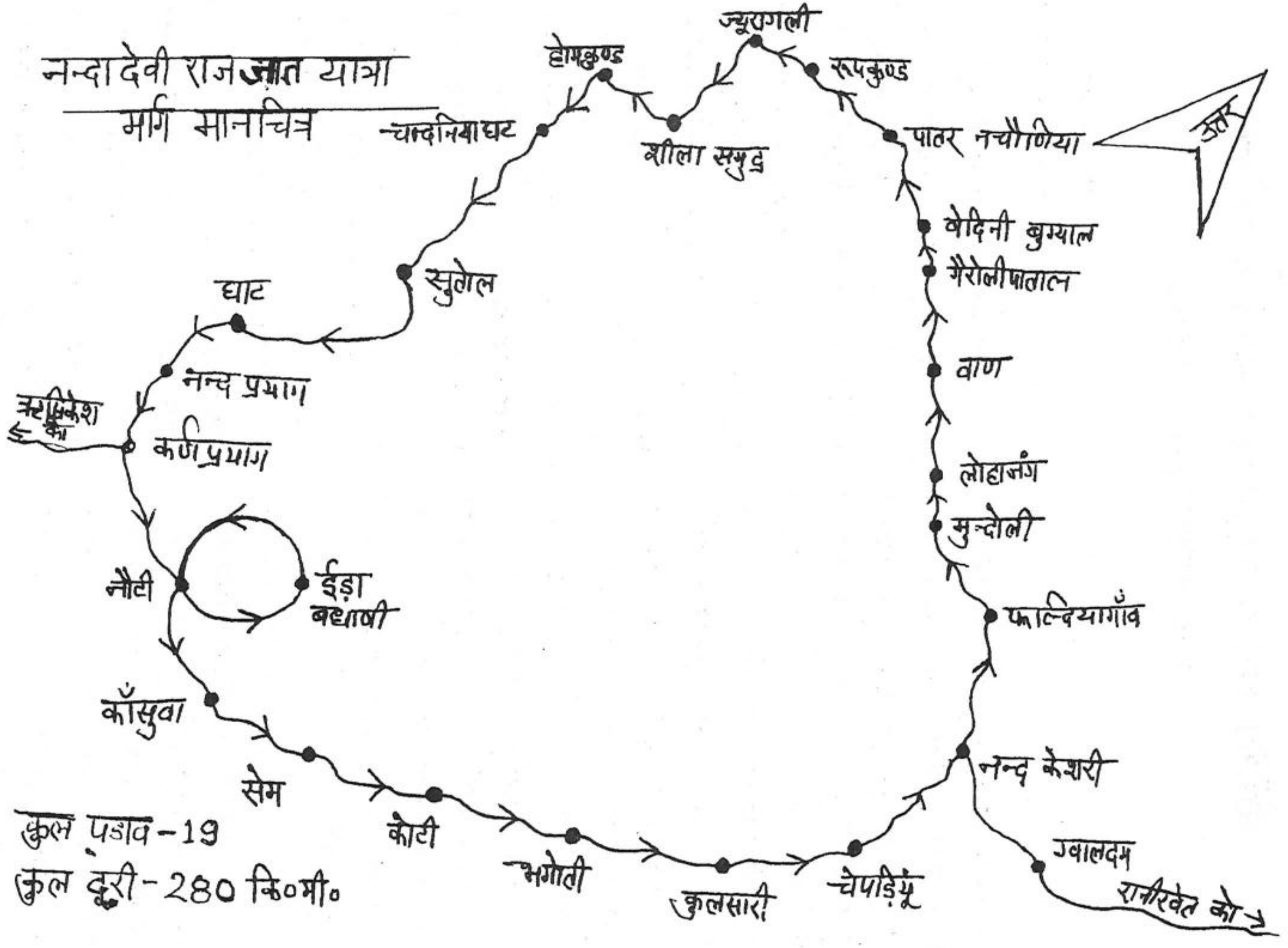
नन्दादेवी राजजात यात्रा
मार्ग मानचित्र
चान्दनियाघट
होमकुण्ड
ज्यूरागली
रूपकुण्ड
शीला समुद्र
पातर नचौणिया
उत्तर
बेदिनी बुग्याल
गैरोलीपाताल
सुतोल
घाट
नन्द प्रयाग
ऋषिकेश को
कर्ण प्रयाग
वाण
लोहाजंग
मुन्दोली
नौटी
ईड़ा बधाणी
फल्दियागाँव
काँसुवा
सेम
नन्द केशरी
कोटी
भगोती
कुलसारी
चेपड़ियूं
ग्वालदम
रानीखेत को
कुल पड़ाव – 19
कुल दूरी – 280 कि०मी०

मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान में वानस्पतिक सर्वेक्षण एक रोमांचकारी अनुभव

दिनेश कुमार अग्रवाल एवं दिपान्वीता बनीक
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

भारत की वनस्पति संपदा प्रचुर एवं विविध है। प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन हजारों वर्ष से मनुष्य के द्वारा होता रहा है। साथ ही निरंतर बढ़ती हुई आबादी की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नित्य नये प्राकृतिक स्थलों, वनों को नष्ट किया जा रहा है। जिसके फलस्वरूप जीव-जन्तुओं की न जाने कितनी जातियाँ लुप्त हो चुकी हैं। दिनों दिन तीव्र हो रहे जैव विविधता के विनाश को रोकने के लिये पिछले कुछ दशकों में राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेको प्रयास किये गये हैं व किये जा रहे हैं। संरक्षण के लिये किये गये उपायों में आरक्षित क्षेत्रों को स्थापित करना एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी उपाय है। भारत में भी यह आरक्षित क्षेत्र अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान या फिर जैव मंडल आरक्षित क्षेत्र आदि के रूप में अनेक प्रान्तों में स्थापित किये गये हैं।

भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व में स्थित अरूणाचल प्रदेश के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र वनस्पतिक विविधता के दृष्टिकोण से काफी समृद्ध है। यह आई. यु.सी. एन. के द्वारा प्रस्तावित विश्व के बारह वनस्पति खजानों में से एक ''पूर्वी हिमालय'' का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसी क्षेत्र में उत्तर सियांग एवं पश्चिमी सीयांग जिले में मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया है। इसका क्षेत्रफल लगभग 483 वर्ग कि. मि. हैं। यहाँ के चोटियाँः समुद्री सतह से 600 मि. से लेकर 2500 मि. तक ऊँची हैं। यह अबोर पर्वतीय क्षेत्र के मध्य भाग में अवस्थित हैं। राष्ट्रीय उद्यान के बीचों बीच सियांग नदी बहती हैं।

भारत के अन्य भागों की तरह यहां बढ़ती आबादी का इतना ज्यादा प्रभाव नहीं है, लेकिन वनों के दोहन का जो सिलसिला पूरे देश में चल रहा है, उससे यह क्षेत्र भी अछूता नहीं है। यहां के वनों को मुख्य खतरा झूम खेती, अनावश्यक रूप से जंगलों में लगाई जाने वाली आग एवं वनों की अवैध कटाई से है। चट्टानों के खिसकने से भी वनों को हानि पहुँच रही है। इसलिये भारत सरकार द्वारा इस क्षेत्रको आरक्षित घोषित किया गया है।

यहाँ की समृद्ध वनस्पति विविधता तथा असंख्य कुल एवं जातियाँ जिनमें शैवाल से लेकर कवक तक, पर्णांग से लेकर पुष्पी पौधों तक शामिल है, ने सदैव वनस्पतिज्ञों को अपनी ओर आकर्षित किया है। लेकिन चारों तरफ ऊँची पहाड़ियाँ, हिम आच्छादित चोटियाँ, कलकलाती प्रबल वेगवती नदियाँ, दुर्गम घाटियाँ, वन्य जीवों एवं सरीसृपों से भरे होने के कारण इस राष्ट्रीय उद्यान में वनस्पति सर्वेक्षण दुष्कर है, परन्तु हिंसक जन्तुओं से भरे घने जंगलों में वनस्पति जातियों

की खोज का अलग ही रोमांच है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिको के दल सर्वेक्षण के लिये विभिन्न क्षेत्रों में जाते हैं, जो वनस्पति जात नमूनों के अतिरिक्त कुछ खट्टठे-मीठे अनुभव लेकर लौटते हैं। अप्रैल 2003 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय के शोधछात्रों का एक दल मौलिगं राष्ट्रीय उद्यान में पौधों के खोज मे गया था। दल में लेखक को मिलाकर कुल पाँच सदस्य थे। दल का लक्ष्य था जेंगींग और रामसीं के आसपास के क्षेत्रों का वानस्पतिक सर्वेक्षण।

दिनांक 28-3-2003 को प्रातः 5-30 बजे हम बस द्वारा पासीघाट के लिये रवाना हुए। असम के मैदानी क्षेत्र–लखीमपुर, ढ़ेमाजी, शिलापत्थर होते हुए शाम 5 बजे हम सब पासीघाट पहुँचे। सफर काफी कष्टप्रद था। यात्रियों से खचाखच भरी बस में अपना सामान सम्भालना मुश्किल हो रहा था। रात को एक होटल में रुक अगले दिन प्रातः 5 बजे अपने लक्ष्य स्थल जेंगींग के लिये रवाना हुए। पहाड़ी रास्ते के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर हम सभी आनंदित हो रहे थे। सड़क के किनारे, पहाड़ के नीचे गरजती सियांग नदी, उसके ऊपर रस्सी और और लकड़ी से बना झुलता हुआ पुल तथा हरे भरे घने जंगल हर किसी को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। बस में होने के कारण हम जंगल में पादप नमूना तो नहीं ले सकते थे, फिरभी हमलोगों का ध्यान वहां की वानस्पतिक विविधता पर केंन्द्रित था। यहाँ मुख्यतः उष्ण कटिबंधीय वन दिखाई दे रहे थे। जैसे-जैसे ऊँचाईबढ़ती जा रही थी उपोष्ण कटिबंधीय वन आरम्भ हो रहे थे। यहाँ पाये जाने वाले पौधों में मुख्यतः डूआवांगा (Duabanga) की प्रजाती मुसा वेल्युटिना (Musa velutina), डिप्टेरोकार्पस मेक्रोकार्पस (Dipterocarpus Macrocarpus), ईरीथ्रीना रौक्सबर्गाई (Erythrina roxyburghii) , एब्रोमा फेस्तुसा (Abroma Fastuosa), डाईसोजाईलम प्रोसेरम (Dysoxylum procerum), काँम्ब्रेटम फ्रेग्रोकार्पम् (Combretum fragrocarpum), स्टीफेनीया ग्लेन्डुइफ्लोरा (Stephenia glanduiflora),मेरेमीआ अम्वेलाटा (Meremia umbellata),आरटोकार्पस हिट्रोफिल्ला (Artocarpus heterophylla), फाईकस (Ficus), पांड़ानस (Pandanus), टेरोस्पार्मम् (Pteospermum) आदि की जातियाँ एवं कहीँ द्रुम जातीय पर्णांग सबका ध्यान आकर्षित कर रहे थे। इन सब के बीच लताओं के जाल बिछे हुये थे, जिनमे पाइपरेसी (Piperaceae), मेनिस्परमेसी (Menispermaceae), फेबेसी (Fabaceae) सीजलपीनेसी (Caesalpiniaceae) माईमोसेसी (Mimosaceae), भीटेसी (Vitaceae), कँामब्रेटेसी (Combretaceae), कुलों की जातीयाँ मुख्य हैं। इनके अलावा विभिन्न जाति के छोटे बड़े पर्णांग घने रुप से फैले हुए थे। नदी के किनारे तथा जंगल के अंन्दर विशाल वृक्षों पर रंग विरंगे फूलों से लदे आर्किडो की जातियाँ मन मोह लेने वाली थी। इनमें डेन्ड्रोबीयम (Dendrobium), बल्बोफाइलम् (Bulbophyllum), इरीआ (Eria), रैनकोस्टाइलिस (Rhynocostylis), एरिड़िस (Aeridis), वैन्डा (Vanda) सोलोगाइन् (Coelogyne), इत्यादि उल्लेखनीय हैं। तरह तरह के

बाँसों की प्रजातियाँ भी सबका ध्यान आकर्षित कर रही थी।

लगभग 14 घंटे की बस यात्रा के बाद हमलोग जेगींग पहुंचे। दस-बारह मकान, कुछ दुकाने एवं कुछ सरकारी दफ्तरों को लेकर यह छोटा शहर सुंदर व मनोरम था। पी. डब्लू. डी. विश्रामगृह में हमारे ठहरने की व्यवस्था हुयी। अगले दिन हम वहाँ के वनाधिकारी से मिल कर आगे के कार्यक्रम के बारे मे बात करना चाहते थे क्योंकि राष्ट्रीय उद्यान में सर्वेक्षण के लिए उनकी अनुमति व सहायता आवश्यक थी। पंचायत चुनाव होने के कारण हम उनसे नहीँ मिल पाये, अतः एक स्थानीय आदमी को लेकर हमनें राष्ट्रीय उद्यान के आस पास के क्षेत्र बफर जोन (Buffer zone)का सर्वेक्षण किया तथा कुछ नमूने भी एकत्रित किये। अगले दिन वनाधिकारी के आने के पश्चात् कोर क्षेत्र में दोने एवं काले हिल् में सर्वेक्षण करने का तय हुआ। जंगल विभाग के एक कर्मचारी के भी हमारे साथ जाने का निश्चित हुआ।

पहली अप्रैल, हर कोई एक दूसरे को अप्रैल फूल बनाने में तुला हुआ था, लेकिन हमने सपने में भी नहीं सोचा था कि प्रकृति ने इस दिन को हमको ठगने के लिये चुना था। सुबह भरपेट नाश्ता करके हम लगभग 7 बजे दोने हिल का सर्वेक्षण करने के लिये वन कर्मचारी के साथ चल पड़े। मन में एक अजीब सा उत्साह था। पहाड़ काफी ऊँचा था, साथमें हिंसक जन्तुओं का डर भी। स्थानीय लोगों का कहना था कि वहां पहले भी जिसने जाने की कोशिश की है, कभी वापस नहीँ आ सका है। इस भय और आशंका के बीच हमलोग पेड़पौधों के नमूने एकत्रित करते हुए आगे बढ़ रहे थे। रस्ते भर जोंक परेशान कर रही थी। पता भी नहीं चला कब हमलोग चोटी पर पहुँच गये। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य, दूर दूर तक फैला जंगल एवं नीचे सियांग नदी के दृश्य देखकर कुछ पल तो हम अपने आपको भूल गये। जब वन कर्मचारी ने समय का ध्यान दिलाया तब सब लोग चौंकन्ने हो गये। तब दोपहर के दो बज रहे थे। काफी दूरी तय करनी थी। तुरंत साथ में लाया गया खाना खाकर हम वापसी के लिये चल पड़े। लगभग दो घंटा चलने के बाद हमें महसूस हुआ कि हम गलत रास्ते पर चल रहे हैं। तब तक हम बहुत दूर आ चुके थे। वापस जाने का सवाल ही नहीं था। काफी चिन्ता, परेशानी और भय के बीच हम सही रास्ता खोज रहे थे। लेकिन विधाता को शायद हमारी परेशानी ही मंजूर थी। बहुत कोशिश के बाद भी हम सही रास्ता न पा सके। शाम होने को आ रही थी। वन कर्मचारी झाड़ियाँ काटता हुआ रास्ता बना रहा था। हम पीछे पीछे आ रहे थे, तभी मूसलधार बारिश शुरु हो गई। पहाड़ के नीचे ऊतरते समव पावँ फिसल जाता था। धीरे धीरे चारों तरफ अंधेरा छा गया। फिर भी हम जंगल में भटक रहे थे। सभी भगवान से प्रार्थना कर रहे थे जो शायद ईश्वर ने सुन ली। हमको एक दो सेल वाली टार्च लाईट मिल गयी, जो शायद किसी शिकारी के हाथों से गिर गयी होगी। जो भी हो, उसी टार्च लाइट की मदद से हम आगे बढ़ते गये। पूरा शरीर पानी से भीगा हुआ था तथा गिरने व चोट लगने के कारण शरीर का बुरा हाल था। काफी कष्ट व कठिनाई के बाद शाम साढ़े सात बजे हम लोग जंगल से बाहर आये । लेकिन इतने से ही

हमारे कष्टों का अंत नहीं हुआ था। वहां से हमारे ठहरने का स्थान वन कर्मचारी के अनुसार लगभग 20 कि. मि. दूर था। जैसे तैसे रात करीव ग्यारह बजे हमसब बुरी हालत में अपने ठहरने के स्थान पहुँचे। पूरा शरीर जोंक एवं उनके द्वारा चूसे गये खून से भरा हुआ था। इतना सब होने के बाद भी हम संग्रहित पादप नमूनों एवं अपने अपने उपकरणों को सम्हाल कर सकुशल लाने में सफल हुए थे।

अगला दिन के पूर्ण विश्राम के बाद दो दिन और काले हिल एवं आस पास के क्षेत्र का सर्वेक्षण बिना किसी कठिनाई समाप्त कर हम दिनांक 6 अप्रैल को वापस पासीघाट चल पड़े।

वन, वनवासी एवं वनसंरक्षण

विनोद मैना
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्टब्लेयर

"वन" या "जंगल" शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "जांग्ला"शब्द से हुई है। यह शब्द वास्तविक रूप से आंगल-भारतीयों द्वारा किसी भी अभेद्‌म घने वनस्पतिक क्षेत्र के लिये प्रयोग में लाया गया है। जो असामान्य पेड़-पौधों एवं जीव जन्तुओं की विभिन्न प्रजातियों को अपने अंदर संजोये हुये, जैविक विविधता व प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण हों। प्रकृति की इस बहुमूल्य संपदा तथा पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखने में इनका महत्व नकारा नहीं जा सकता। भवन तथा आकर्षक फर्नीचर के निर्माण में काम आने वाली विभिन्न काष्ठ, असाध्य रोगों के उपचार में ऊपयोग की जाने वाली जड़ी-बुटियाँ वनों की हो देन है। वन बादलों को आकर्षित करके मात्र वर्षा को ही प्रभावित नहीं करते अपितु वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमंडल के तापमान को भी नियंत्रित करते हैं। वर्षाकाल के दौरान जल को अवशोषित करके बाढ़ को रोकने में भी सहायता सिद्ध हुये हैं। सामान्यतः सदावहार वन ही विभिन्न औषधियों, भोजन काष्ठ, रेशे एवं अन्य उपयोगी वनस्पतियों के स्रोत हैं, साथ ही वन्य जीवों के आश्रय स्थल भी है।

अनादि काल से ही मानव ने प्रकृति के आँचल में इन्ही वनों व कंदराओं को अपना आश्रयस्थल बनाया। किन्तु अग्नि एवं धातुओं की खोज ने उसके हाथ में सभ्यता के विकास की कुँजी थमा दी। और धातु के औजारों के आविष्कार स्वरूप जंगलों की कटाई-सफाई का जो हननकारी दौर शुरू हुआ वो आज तक ज्यों का त्यों जारी है। वनों को साफ करके खेती की शुरूआत, बस्ती व गाँवों का उदगम तथा ग्रामीण क्षेत्रों का व्यवसायिक केन्द्रों, कस्बों व नगरों के रूप में परिवर्तित करना मानव की बड़ी उपलब्धि है। मानव जो कभी स्वच्छंद विचरण करता था, वह कुटुम्ब व कबीलों में संगठित हो गया। इन्हीं में से कुछ तो गोठ, गाँव, बस्तीयों में स्थायी रूप से बस गये, किन्तु कुछ अपनी स्वच्छंद प्रवृति के कारण घुमन्तु हो रहे।

आज के इस वैज्ञानिक युग में जब मानव अपने विकास की चरमतम सीमा पर है, वही कुछ मानव समूह ऐसे भी हैं जो दुनिया से अनभिज्ञ इन्हीं वनों व कंदराओं में भटक रहे हैं। वन एवं ये एक दूसरे के पूरक हैं। आज भी ये अपने उपयोग की हर वस्तु उदाहरणार्थ वस्त्र से लेकर औषधियों तक के लिये पूर्णतया वनों पर ही आश्रित हैं। किन्तु विनाश कारी प्रगति के प्रभाव से ये भी अछूते नही रहे। बढती आबादी, औद्योगिकीकरण, कृषि, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, जंगलों की कटाई के कारण वन भूमि के प्रतिशत में कमी आ रही है।

आज हमारे देश में केवल 19% प्रतिशत के करीब हो वन शेष हैं। वनों के घटते स्तर के साथ ही इन आदि मानव समूहों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है।

यदि वनवासियों के व्यवहारिक ज्ञान व जीवन का गहन अध्ययन करें तो पायेंगे कि ये वनों व प्रकृति से संबंधित ज्ञान के अपार सागर है। जंगलों में घटने वाली हर प्राकृतिक-अप्राकृतिक घटनाओं व पशु-पक्षियों के दिखने व बोलने पर शकुन, अपशकुन भविष्य एवं मौसम संबंधी घोषनाएँ करना इनके बाँये हाथ का खेल हैं। जंगली जड़ी बूटियों की पहचान व उनका विभिन्न रूप से उपयोग करना इन्हें बहुत सलीके से आता है। अब तक किये गये आदिवासी क्षेत्रों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि इन वनों में ऐसे जंगली पेड़-पौधे, जिनका दोहन किया जा सकता है प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। वनवासियों के द्वारा अपनी विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिये प्रयोग में लाई जाने वाली 7000 से भी अधिक पादप प्रजातियाँ अब तक रिकार्ड की गई हैं।

वन एवं पर्यावरणीय संरक्षण को ध्यान में रखते हुये अंर्तराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं ने संसार भर में ऐसी सैकड़ो स्थलों, जहाँ पर जाति के पेड़-पौधे पाये जाते हैं, उनके संरक्षण को योजनाएँ चलाई हैं। जिनका उद्देश्य है ऐसे प्राकृतिक स्थलों की भूमि, जलवायु तथा वन संपत्ति को सुरक्षित एवं संरक्षित करना भारतवर्ष में तो प्रकृति की उपासना अनादि काल से चली आ रही है। हमारे धर्मग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं को पवित्र मान कर पूजा करना एक महत्व पूर्ण बात है। मूसक, हाथी, सिंह गरूड़, नाग, हँस और उलूक, आदि प्राणियों को विभिन्न देवी-देवताओं के वाहन रूप में पूजा जाना तथा भगवान विष्णु के बारह अवतारों में मत्स्य, कच्छप एवं शूकर का रूप मान कर आराध्य मानना प्राणियों के संरक्षण का एक महत्वपूर्ण जरिया हैं।

वनवासी वृक्षों को अपने देवी-देवताओं के आश्रयस्थल मानते हैं। कुशा, दूब, पपिल, बड़, नीम, आम, बेल, आँवला, तुलसी, कमल, कदम्ब इत्यादि उसी श्रेणी के पौधे हैं। मंदिरों तथा यज्ञशालाओं के आसपास इन्हें लगाना और धार्मिक अनुष्ठानों में इनका उपयोग करना एवं पावन व पूज्य मानकर इनके काटने या जलाने पर प्रतिबंध होना इन वनस्पतियों के संरक्षण में सहायक है।

इतना ही नहीं कुछ त्यौहार ही वृक्षों के नाम पर आयोजित किये जाते हैं जैसे बड़ अमावश्या, आँवला नवमी, बड़ पूर्णिमा एवं करमा (बिहार) आदि।

कुछ जनजाति समूदाय अपने वंश के पहचान हेतु वृक्षों या पशु पक्षियों को चिन्ह रूप मानते हैं। जिन्हें ये अपनी अधिष्टात्री छिराड़ी (राजस्थान) कहते हैं। इतना ही नहीं ज्यादातर जनजातिय समूह अपने गोत्र (टोटेनिक जेम्स्) पेड़-पौधों व प्राणिओं के नाम के आधार पर रखते हैं। और अपनी विशुद्ध सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार इन्हें क्षति नहीं पहुँचाते जो न केवल इन वृक्षों व प्रणियों का बल्कि उनके परिवेश को भी संरक्षित करने में सहायक हैं। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर भारतवर्ष में नेक लघु व पावन वन सुरक्षित हैं। मेघालय के खासी व जैयन्तिया वन इसी श्रेणी में आते हैं।

आज मानव लोभवश लगातार वनों की कटाई व प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन करता चला आ रहा हैं। वनों के इस विनाश से यहाँ पनपी अनूठी संस्कृति, ज्ञान व कला भी लुप्त हो रही हैं। और इन वनो पर आश्रित आदिवासीयों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह की जरावा, ओंगी एवं सेन्टीनलीज जनजातियों की लगातार घटती जनसंख्या इसका जीता जागता उदाहरण हैं। ये जनजातियाँ लगातार अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु संघर्षरत हैं। राजस्थान की विश्नोई जनजाति का जोधपुर रियासत के तत्कालीन शासकों से खूनी संघर्ष तथा बलिदान इस जनजाति को वृक्षों के प्रति आस्था को दर्शाता है।

पर्यावरणीय स्थिरता बनाये रखने के लिये परिस्थितिकी संतुलन की बहाली और बचे हुये प्राकृतिक स्थलों के परिरक्षण को ध्यान में रख कर वनों एवं वन वासियों के बीच सहजीवी संबंधों को पुनः स्थापित करना होगा। इनके अभावग्रस्त जीवन का गहनता पूर्वक अध्ययन करना होगा। जो इन्हें परिस्थिति वश जंगलों के विनाश औरकुछ हद तक उग्र बनने के लिये प्रेरित करते हैं। ऐसे कारणों का पता लगाने के साथ ही समाधान भी इन्हीं के बीच खोजना होगा।

टेरिडियम एक्यूलाइनम (ब्रेकन) के विविध उपयोग

भूपेन्द्र खोलिया
राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

मानव व पेड़ पौधों का चोली दामन का साथ है। मानव की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति पुष्पीय पौधों व उनके उत्पादों से होती है, किन्तु मानव जीवन में अपुष्पीय पौधों के उपयोगों को नकारा नहीं जा सकता। इन अपुष्पीय पौधों में टेरिडोफाइटा (पर्णांग एवं पर्णांग सदृश) समूह के पौधों की आज विश्व में लगभग 12000 प्रजातियाँ हैं किन्तु मध्यकल्प में ये पोधे बहुतायत से मिलते थे जो डायनासोर का प्रमुख भोजन थे। आज संसार का अधिकांश कोयला इसी समूह के पौधों का परिरूप है जो करोड़ों वर्ष पहले भूगर्भ में समा गये थे।

ये पौधे आज भी विश्व जैव विविधता का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। साथ ही किसी भी परितंत्रके निर्माण व संरचना में अहम् भूमिका निभाते हैं। इसके आतिरिक्त पादप जीवन चक्रकी जटिलताओं व बनस्पति जगत के विकास की गुणो को सुलझाने में इस समूह के पौधों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। उपरोक्त प्राकृतिक य वैज्ञानिक उपयोगिताओं के अतिरिक्त आज भी विश्व के विभिन्न भागों में इस समूह के पौधों का उपयोग भोजन, चारा, विछावन,दवाइयाँ व बागवानी में किया जाता हैं।

प्रस्तुत लेख में टेरिडोफाइटा समूह के एक पौधे ब्रेकन (टेरिडियम एम्यूलाइनम) नामक पर्णांग के विभिन्न उपयोगों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा हैं।

सर्वप्रथम इस पौधे का नामकरण लीनियस ने सन् 1533 ई. में किया। चूँकि इसकी पत्ती की संरचना चिड़िया के पंख सदृश है, इस कारण इसका वंश नाम टेरिडियम (Pteron = पंख या पंख सदृश) रखा गया, साथ ही लीनियस ने देखा कि इसके पर्णवृन्त (पीटियोल) को तिरछा काटने पर उसमें संवहन उतक की संरचना पंख फैलाए बाग के समान है,अतः इसका जाति नाम एम्यूलाइनस (एम्पूलाइना = बाज) रखा गया।

यह पर्णांग सुदूर दक्षिणी व उत्तरी क्षेत्र को छोड़कर संसार के लगभग सभी हिस्सों में पाया जाता हैं। इसका विस्तार पूरानी दुनिया में भूमध्य रेखा के ऊपर यूरोप, चीन, जापान, अल्टाई पर्वत श्रेणी भारतीय उपमहाद्वीप, जावा, सुमात्रा, फिलीपीन, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड व नई दुनिया में उपघ्रुवीय कनाडा से लेकर मैक्सिको तक हैं। संसार में इसकी कई उपप्रजातियाँ पाई जाती हैं। यह एक औसत दर्जे की ऊँचाई का पर्णांग है, जो घने जंगलों, खुले स्थानों व पहाड़ी ढालों पर झाड़ीनुमा दिखता है। इसका भूमिगत तना लम्बा, पतला व शाखित होता है व खाली जमीन पर तेजी से फैलकर वृद्धि करता है। इसके इसी गुण के

कारण यह यूरोप व उत्तरी एशिया का सबसे प्रमुख खरपतवार है व उस क्षेत्र की फसल की पैदावार को प्रभावित करता हैं। आजकल भारत के पर्वतीय क्षेत्र की कृषि भूमि पर भी यह तेजी से फैल रहा है। (चित्र-१) संसार के लगभग सभी हिस्सों में इसका प्रयोग किसी न किसी रूप में किया जाता है जिनमें से प्रमुख निम्न हैं।

१. भोजन :– खाद्य पदार्थों की लगभग सभी पुस्तकों में इस पर्णांग को भोजन के रूप में सूचीवद्ध किया गया है। प्राचीन समय में जाड़े के मौसम में इसके भूमिगत तने व वसन्त ऋतु में इसके कोमल सर्पिल पर्णवृन्तों व पत्तियों को खाया जाता था। आज भी यह पर्णांग जापानियों का एक प्रमुख भोजन है। जापान में यह वार्बी (Warbi) या जेनमाई (Zenmai) के नाम से जाना जाता है। जापानी लोग इसके कोमल तथा नये सर्पिल पर्णांगों को नमक के साथ कच्चा खाते हैं। इसकी कड़वाहट को कम करने के लिये इसके टुकड़ों को राख या सोडियम कार्बोनेट के साथ गर्म पानी में उबालकर धोने के उपरान्त इसकी सब्जी बनाते हैं। जापान में इसके कोमल पर्णांगों का अचार भी बनाया जाता है जिसे सूकेमानो (Tsukemano) कहते हैं। यह यहां के भोजन का मुख्य स्वादवर्धक है व लम्बे समय तक प्रयोग में लाया जाता हैं।

उसके कंद में बहुत अधिक मात्रा में मण्ड होती है अतः प्राचीन समय से ही यह भोजन का एक वैकल्पिक श्रोत माना गया है। केनरी में भोजन की कमी के समय इसके प्रकन्दों को सुखाकर जौ के साथ पीसने से एक विशेष प्रकार का आटा बनाते थे जो ''गोपलो'' कहलता था व इस आटे की रोटी बड़े चाव से खाई जाती थी। अमेरिका के पश्चिमीं प्रान्तों, न्यूजीलैण्ड व सोसाईटी द्वीप में भी ब्रेकन के प्रकन्द को खाए जाने की जानकारी है। इंग्लैण्ड व हैम्पसायर में आज भी भोजन के एक विशेष प्रकार के स्वाद या खुशबू के लिये इसका प्रयोग किया जाता हैं।

दवाइयाँ :– अमेरिका में आदिवासियों द्वारा ब्रेकन के भूमिगत तने के घाव भरने व रक्तश्राव को रोकने में उपयोगी माना जाता हैं। इसके काढ़े या कवाथ से धांवों में मरहम पट्टी की जाती है जो घावों को सूक्षम्जीवों से बचाती है तथा घाव जल्दी भरती है। इसके प्रकन्द के पाउडर को चर्बी, घी या तेल में मिलाने से एक मलहम बनता है जो सौन्दर्य प्रसाधन है व त्वचा की सूक्ष्म जीवों से रक्षा करता है। इसके पाऊडर से अल्सर व पेट के घाव ठीक हो जाते हैं व अंदरूनी घाव जल्दी भरते हैं। अमेरिका व यूरोपीय देशो में इसका कृमिनाशक के रूप में प्रयोग काफी समय से किया जा रहा है। इसकी जड़ों व प्रकन्द को कूटकर जल में उवालने से प्राप्त काढे को पीने से पेट के गोल व चपटे कृमि मर जाते हैं। अमेरिका के रेड इंडियन सदियों से इसका प्रयोग लिवरटानिक के रूप में करते आ रहे हैं। इसकी पत्तियाँ पेट साफ करने व कब्ज दूर करने के उपयोग में लाई जाती हैं। इसको गर्भवती महिलाओं को खाने की मनाही है क्योंकि इसके सेवन से गर्भपात की संभावना रहती हैं।

औद्योगिक उपयोग :– सोडे की खोज से पहले यूरोप व इंगलैण्ड में इसका प्रयोग कांच के निर्माण में क्षार के रूप में किया जाता था, क्योंकि इसकी राख में बहुत अधिक मात्रा में पोटाश होता है। इसकी राख के

गोले बनाकर जापान के लोग इनका प्रयोग साबुन के रूप में करते थे। आज भी जापान में इसकी राख व वसा से कपड़े धोने का साबुन बनता है। इसकी राख का प्रयोग रेशम व फलालेन को चमकाने व चमड़ा कमाने में भी किया जाता हैं। इंगलैण्ड व हैम्पसायर में उसके तने व पत्तियों से एक विशेष प्रकार का स्वाद विकसित किया जाता है जो डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थो में उपयोगी हैं। इस स्वाद/खुशबु का प्रयोग बियर निर्माण में भी किया जाता है।

अन्य विविध उपयोग :– ब्रेकन का उपयोग आदिकाल से अनेकों स्थान पर झोपड़िया बनाने व मकानों की छतों के निर्माण में किया जाता है। उत्तरी भारत में आज भी इसका प्रयोग झोपड़िया के छत निर्माण व पत्थरों की छतों के नीचे बिछाने में किया जाता है जो छत पर जमने वाली बर्फ की ठंड से रक्षा करता है। इंग्लैण्ड, मलेशिया, उत्तरी भारत व न्यूजीलैण्ड में इसकी सूखी व हरी पत्तियां का प्रयोग पशुओं के विछावन के रूप में किया जाता है। जिसको बाद में कम्पोस्ट खाद को रूप में प्रयोग करते हैं। वैज्ञानिक आकड़ों के अनुसार 50 टन ब्रेकन की सूखी पत्तियों से 1 टन पोटाश प्राप्त होती है। इंग्लैण्ड में इसके प्रकन्द व कोमल तनों को सुअर के चारे के रूप में प्रयोग मे लाया जाता हैं।इसकी सूखी पत्तियों को मछली, फलों व सूजियों की पैकिंग में प्रयोग में लाते हैं जो कवकों से इनकी रक्षा भी करता हैं।

कुछ आधुनिक शोध व भविष्य की संभावनाएः– ब्रेकन आदिकाल से ही पशुओं के लिए विषैला माना जाता रहा है और देखा गया है कि पशु इसे चरते नहीं हैं। इसलिए चारागाही के मध्य यह जाड़ीनुमा पौधा बहुतायत से दिखता है। पश्चिमी इंलैण्ड में हुई लोगों से पता चला है कि इसके कोमल तनों में कोई भी जहरीला पदार्थ नहीं है। अतः मानव द्वारा इनका सेवन (कोमल तनों का) हानिकारक नहीं है तथा कोमल तनों पशुओं के चारे के रूप में भी प्रयोग लाया जा सकता हैं। वैज्ञानिक खोजों से यह भी पता चला है कि ब्रेकन की पूर्ण विकसित व पुरानी पत्तियों में एक विशेष प्रकार जहरीला पदार्थ हैं जिसका मात्रा पौधे की वृद्धि के साथ बढ़ती है तथा यह कैंसरकारी व उत्परिवर्तन का कारण है।

वैज्ञानिकों ने संभावना व्यक्त की है कि जापानी लोगों में आंतों के कैंसर की उच्चदर ब्रेकन का सेवन हो सकती है। ब्रेकन पर की गई तमाम शोधों के आधार पर वैज्ञानिकों ने इस खाद्य पदार्थो की सूची से हटाने की सलाह हैं। साथ ही प्राचीन समय में घावों, आतों की बीमारियों व अल्सर के इलाज में इसके प्रयोग व स्वस्थ व्यक्ति द्वारा इसके सेवन से कैंसर की संभावना के कारण वैज्ञानिक ब्रेकन से कैंसर की दवा मिलने की संभावना व्यक्त कर रहे हैं। यदि इस प्रयोग में सफलता मिल जाय तो कैंसर जैसे लाइलाज वीमारी पर रोक लगाई जा सकेगी।

गुलाब : जितना सुन्दर उतना उपयोगी

छवि घरा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

गुलाव को फूलों का राजा कहा जाता है। यह उपहार में, आभूषण की तरह एवं विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में माला के रूप में प्रयुक्त होता हैं। यह विभिन्न प्रकार की ओषधि, सौन्दर्य प्रसाधन, तरल सुगन्धि (परफ्युम) बनाने में काम आता है; जैसे गुलाब जल, गुलाब तेल इत्यादि।

इस लेख में भारत में उगाई जाने वाली गुलाब की 13 जातियों का वर्णन है।

रोजा एल्वा एल : यह हृदय की दुर्वलता दूर करने व ज्वर को कम करने में औषधि के रूप में काम आते हैं। भारत के विभिन्न बगानों में इसकी खेती होता है।

रोजाबेंकसिया आर बी आर. एक्स एइट : इसके पत्तों को घावों का भरने, कड़वे मूल शक्तिवर्धक के रूप में व कृमिनाशक के रूप में ऊपयोग किए जाते हैं। यह जाति मुख्यतः पंजाव, उत्तर प्रदेश, प बंगाल (दार्जिलिंग) में पाई जाती है।

रोजा ब्रुनोनी लिण्डल० : गुलाब के अध पके फल में विटामिन सी होने के कारण खाये जाते हैं। गुलाब के वृक्ष अंश घाव के उपचार में काम आता हैं। ''राजतारिणी'' नामक इसकी जड़ आँखों के रोगों के उपचार में काम आता है। यह जाति कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, मेघालय, असम, मणिपुर व अरूणाचल प्रदेश के जंगलों में पाई जाति हैं।

रोजा सेटीफोलिया एल.: इस जाति के फलों का अर्क आँत के अल्सर के उपचार में, बिच्छू के दंश व रक्त सम्वन्धी रोगों में काम आता है। इसकी सूखी पंखुड़ियों का सुगन्ध के लिये प्रयोग होता है। इसके पके फल व बीजों के चूर्ण से अतिसार और रक्त स्राव का उपचार किया जाता है। इसके पत्ते सिर के जख्म, अपथालमिया के अतिरिक्त दाँत, पाइल्स एवं लीवर रोगों के उपचार मे काम में लाया जाता हैं। भारत में इसकी खेती पंजाब में होती हैं।

रोजा चाइनेंसिस जैक. : यह अल्सर, मोच और जख्मों को भरने के काम आता है। उद्यानों में इसकी खेती होती है।

रोजा डामासेना हारम.: इसके फूलों का अर्क ज्वर की पीड़ा कम करता है, भूख वढ़ता है। जले हुए घावों और कुष्ट रोग निदान में काम आता हैं। इससे गुलाब जल एवं विभिन्न ओषधि बनती है। इसकी पौष्टिक कोंपले हृदय रोग में व तरल औषधि (लेक्सेटिव) के रूप में, आँख के रोग, सिर दर्द के दर्द में उपयोगी है। गुलकन्द को लेक्सटिव, गले और टॉन्सिल के रोग में काम में लाया जाता है। इसके पुंकेशर अंश व

फ्ल पौष्टिक होते हैं। उत्तर प्रदेश में इसकी खेती होती हैं।

रोजा फोइटिडा हारम.: इसके फूल उदर पीड़ा व अतिसार में उपयोग में आते हैं। इसके कच्चे फल खाते है जिसमें 1.2-5.4% विटामिन सी है। यह जाति जम्मु-कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के जंगलों में मिलती है। बगानों में भी इसकी खेती होती है।

रोजा गालिका एल : इसकी सूखी पंखुड़ी कमजोरी, आँत सम्बन्धी शिकायत व अत्यधिक कफ के उपचार में काम आता हैं। गुलाब जल व गुलाब का तेल दमा और त्वचा संबंधी रोगों में प्रयोग किया जाता है। भारत में इसकी खेती होती हैं।

रोजा जाइगांटिया कोलेट एक्स क्रे प : इसके फल खाये जाते हैं जो मणिपुर के बाजारों में बिकते हैं। यह जाति सिक्किम, मणिपुर, नागालैण्ड प. बंगाल (दार्जिलिंग) के जंगलों में उगती हैं।

रोजा माइक्रोफाइला लिण्डल. : विटामिन सी से भरपूर इसके फल खाये जाते हैं। यह जाति जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, पं बंगाल व सिक्किम के जंगलों में पाई जाती हैं।

रोजा मल्टीफ्लोरा थान्ब.: इसकी कोमल पत्तियाँ एस्कर्बिक एसिड का उत्तम श्रोत है तथा पत्ती,वृक्ष के अंश व फूलों का अर्क ग्राम पॉजिटिव बेक्टेरिया व माइक्रोबेक्टेरिया से होने वाले रोगों के उपाचार में काम आता हैं। केम्पफिरोल, ग्लाइकोसाइडस, एस्ट्रागालिन व मल्टीफ्लोरिन की उपस्थिति के कारण इसके फूल लेक्सेटिव के रूप में दिए जाते हैं। इसके फल से घाव, मोच, चोट व अल्सर का उपचार होता हैं।

रोजा सेरिसिया लिण्डल. : यह जाति जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, प. बंगाल। सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश मणिपुर व नागालैण्ड में पाई जाती हैं तथा इसके फल खाद्य हैं।

रोजा वेबियाना रॉयल : इस जाति के फल खाये जाते हैं जिसमें विटामिन सी का अंश (8% तक सूखे पल्प में) होते हैं। यह जाति जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश के जंगलों में पाई जाती हैं।

पराबैंगनी विकिरण से वनस्पति जात पर बढ़ता हुआ खतरा !

कुमार अम्बरीष
अरूणाचल फील्ड स्टेशन, इटानगर

नूनमः जना सूर्मेण प्रसूताः। अर्थात् समस्त जीवधारी सूर्यदेव की अनुकम्पा पर निर्भर है। यह तथ्य एक पौराणिक सत्य है। सूर्यदेव की अर्ना से ही भूमंडल पर अनेकों जीवधारियों का भरण पोषण परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में सदियों से होता आ रहा हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो हरित पौधे जी कि सौर ऊजी व कार्बन डाई अक्साइड कर सहायता से शर्करा रूपी प्राथमिक खाद्य उत्पाद् बनाते हैं, प्राथमिक उत्पादक कहलाते है। अतः ये जीवन का भौतिक आधार हैं। समस्त जीवधारी परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं अतः विभिन्न खादय चक्रों व शृंखलाओं के माध्यम से यह संसार चलता आ रहा हैं।

लेकिन पिछले कुछ दशकों में मानव ने विकास के नाम पर प्रकृति से अत्यधिक छेड़छाड़ करके एवं पर्यावरण संतुलन को प्रभावित कर, अनेकों खतरें मोल ले लिये है जिसका एक ज्वलंत उदाहरण हैं सूर्य को खतरनाक पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet Rays) को निमंत्रण दे डालना! सूर्य से भूमंडल पर आने वाले प्रकाश में तरंगदैध्य धर्म के आधार पर विभिन प्रकार के स्पेक्ट्रम विद्यमान होते है। जैसे–इनफ्रा रेड, विजिविल व अनविजिविल। इनमें अनविजिविल स्पेक्ट्रम में पायी जाने वाली परावैंगनी किरणें प्रायः जीवधारियों के लिये हानिकारक हैं। यद्यपि इनकी मात्रा सूर्य के कुल प्रकाश की केवल 5 प्रतिशत है लेकिन इनकी प्रतिशत मात्रा किन्हीं कारणों से अगर भूमंडल पर बढ़ गयी तो स्थिती भयावह हो सकती हैं।

अतः प्रकृति ने वायुमंडल के स्ट्रेटोस्फीयर (भूतल से लगभग 25 किमि. दूर) में एक ऐसे सुरक्षा कवच की रचना की हैं जो इन खतरानाक पराबैगनी किरणों को अवशोषित कर अन्य उपयोगी प्रकाशीय विकिरण को पृथ्वी पर जाने देती है जिसका नाम है 'ओजोन कवच' या 'ओजोन परत'। इस प्रकार यह ओजोन ब्रह्मांड में एक विशाल एवं विशेष छलनी (Filter) की भाँति कार्य करके भूमंडल पर जीवधारियों (प्राणी एवं वनस्पति) को पराबैंगनी विकिरण के दुष्परिणामों से बचाती हैं। पराबैंगनी विकिरण, त्वचा कैंसर, कैटारेक्ट्स, एनबर्निगं, एजिंग व अन्य बीमारियों का जनक हैं। साथ ही साथ जलीय जीवन एवं जैव विविधता को भी प्रभावित करता हैं। यह महत्वपूर्ण खाद्य फसलों जैसे मक्का, सोयाबीन गेहूँ,, धान एवं दलहनों आदि के लिये भी नुकसानदायक हैं।

ओजोन छिद्र एवं परावैंगनी विकिरण के कारक एवं दुष्परिणाम :

वायुमंडलीय प्रदूषण एवं तामक्रम में हो रही निरंतर वृद्धि ने समूचे विश्व के वैज्ञानिकों का ध्यान इस

और एकत्रित कर चिंतन के लिये विवश किया हैं। आधुनिकीकरण के दौर में मानव द्वारा वायुमंडल में छोड़े जा रहे खतरनाक कार्बनिक व अकार्बनिक रसायनो जैसे एंथ्रोपोजेनिक क्लोरीन, क्लोरोफ्लुरो कार्बन, नाइट्रस आक्साइड, मीथेल व एरिओसोल की बढती मात्रा ने ओजोन परत को अत्यधिक प्रभवित किया हैं।

सन् 1985 में ब्रिटिश वैज्ञानिकों के एकदल ने अंटार्कटिका अभियान के दौरान जब भूमंडल के दक्षिणी गोलार्ध में, ओजोन परत में एक बढ़े छिद्र को देखा तो उन्होने अपने वक्तव्य से संसार को चेताया कि हम पराबैगनी विकिरण से होने वाले खतरों से निपटने के लिये तैयार रहें। फलस्वरूप सन् 1985 में ही विएना में 'ओजोन क्षरण' पर प्रथम सम्मेलन आयोजित करा गया और इसके खतरनक परिणामों पर गहन चर्चा करके इसके निवारण की योजना बनायी।इसके पश्चात सन् 1987 मान्ट्रीयल में क्लोरोफ्लुरोकार्बन, नाइट्रस आक्ससाइड आदि खतरनाक रसायनों के निर्माण एवं प्रयोग को खत्म करने हेतु एक अंतराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने इस बात पर बल दिया कि इन रसायनों के निर्माण प्रयोग पर 50% की कटौती की जायेगी किन्तु फरवरी सन् 1989 में 'ओजोन परत को बचाओं' (Saving the Ozone Layer) विषय पर लंदन में आयोजित एक अंतराष्ट्रीय महासम्मेलन, 1987 के 'मॉंट्रियल् प्रोटोकॉल' पर विभिन्न विकासशील एवं विकसित देशों के पर्यावरण मंत्रियों के हस्ताक्षर करवाना भी था जिसमें सन् 1987 तक सी एक स्पेस के निर्माण पर 50% की कटौते उल्लाखित थी।

विश्व के तीन राष्ट्र अमेरिका, रूस व 'घ जापान क्योकि (CFCS) के 95% उत्पादन के लिये जिम्मेदार है ने इस विषय में किसी संमझौते पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। बाकी देशो जैसे स्वीडन, जर्मनी आदि जोकि कुल उत्पादन के केवल 2% उत्तर दायी है इसके लिये सहर्ष हस्ताक्षर किये।

3 से 14 जून, 1992 को रियोडिजनेरियो, ब्राजील में आयोजित "भूमिशिखर सम्मेलन" में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार ने भी ओजोन कवच सुरक्षा हेतु सम्मेलन में अपील की।

वर्तमान स्थिति :

वर्तमान में विकसित देशों में बढ़ते औद्योगिकीकरण, विकासशील देशों में वातावरण में बढ़ती एरिओसोल की मात्रा एवं अन्य वायु प्रदूषण के मदेद्नजर ओजोन क्षरण की स्थिति सुधरने के बजाय और बिगड़ती जा रही हैं। हाल ही में आर्कटिक पर उत्तरीगोलार्ध में भी सेटेलाइट आंकडों के माध्यम से ओजोन परत में कई छोटे बड़े छिद्र देख गये हैं। जो इस बात के द्योतक है कि खतरा टला नहीं बल्कि और बढ़ता जा रहा है।

पराबैंगनी विकिरण खतरनाक–क्यों और कैसे?

सूर्य की अल्ट्रावॉयलेट जैसा कि नाम से संकेत मिलता हैं कि ये किरण अल्ट्रा यानी छोटी लम्बाई की तरंगे हैं। अतः इनकी भेदन क्षमता बहुत तीव्र एवं

अधिक होती हैं। यह विकिरण हैं जीवधारियों (प्राणी एवं वनस्पति) की मृदु कोशिकाओं में प्रवेश करके उनकी जैविक प्रकियाओं में गतिरोध पैदा करता है साथ ही प्रोटीन, पर्णहरित, डी. एन. ए. व आर एन. ए. को नुकसान पहुँचाता हैं जिससें कोशिकाओं में क्लोरोसिस व नेक्रोसिस की स्थिति उत्पन्न होने लगती हैं। इन सबके प्रभाव से जीवों और पेड़ पौधों की वृद्धि एवं उपज घटती जाती है एवं कभी - 2 मृत्यु भी हो जाती हैं।

इस प्रकार 'ओजोन परत' के नष्ट होने से पृथ्वी पर विचरण करने वाले जीव जंन्तुओं और वनस्पतियों पर पराबैंगनी विकिरण से उत्पन्न खतरा बढ़ता जा रहा हैं। ओजोन परत के और अधिक क्षरण व परावैंगनी विकिरण के और अधिक बढ़ने की स्थिति में इस खतरे के औौर अधिक घातक होने की आशंका को नकारा नहीं जा सकता! फसलों के उत्पादन में गिरावट आने पर क्या हम एक अरब से ऊपर की आबादी वाले देश में खाद्यान संकट से निपट सकेगें? क्या हम इस पृथ्वी को विशाल जैव विविधता व प्राकृतिक संसाधनो को संरक्षित रख पायेगें? ऐसी ही विभिन्न प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिये वायुमंडल को स्वच्छ व प्रदूषण मुक्त रखना अनिवार्य होगा अन्यथा हम भविष्य में आने वाली पीढ़ीयों के लिये क्या छोड़ कर जायेगें?

गोरुमारा राष्ट्रीय उद्यान

लोपामुद्रा महान्ति
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय,
हावड़ा

हमारे देश का लगभग 15% भूभाग वनो से घिरा हैं जिसमें से 2.4% वन पश्चिम बंगाल में है। प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पर्यावरण के सामने गम्भीर संकट उत्पन्न कर दिया है। ओजोन परत का क्षरण, पृथ्वी के तापमान का बढ़ना, अम्लीय वर्षा, जलस्तर में कमी, बाढ़ व सूखे की स्थिति का वार बार आना इस बात को दर्शा रहे हैं। यदि हम मानव सभ्यता को विनाश से रोकना चाहते हैं, तो हमें पर्यावाण की सुरक्षा करनी पड़ेगी। इसको ध्यान में रखकर ही विश्व स्तर पर पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण नियंन्त्रण की दिशा में गम्भीर प्रयास किये जा रहे हैं। सन् 1971 में युनेस्को द्वारा संचालित इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विश्व के विभिन्न भागों में संरक्षित क्षेत्र घोषित किये गये व अनेक अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान व जीव मण्डल आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना की गई। ये आरक्षित क्षेत्र वनस्पति तथा जीव जगत के स्वस्थाने (In-situ) संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं। भारत में अब तक 448 अभयारण्य, 85 राष्ट्रीय उद्यान व 12 जीव मण्डल आरक्षित क्षेत्र घोषित किये जा चुके हैं, जिनमें से गोरुमारा राष्ट्रीय उद्यान एक है। गोरुमारा राष्ट्रीय उद्यान उत्तर बंगाल के अन्तर्गत जलपाईगुडि जिले मे पहाड़ी क्षेत्र में स्थित हैं। ये उद्यान मूर्ती और जलढाका नदी के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में स्थित हैं। वहाँ से कोई भी आकाश छूनेवाली कांचनजंगा और हिमालय पर्वत श्रृंखला की मनोरम छटा का आनन्द उठा सकता हैं।

भारत सरकार ने 8.516 वर्ग कि.मि. के क्षेत्र को सन् 1949 में "गोरुमारा राष्ट्रीय अभयारण्य" घोषित किया। इसकी जैव-विविधता एवं उपरी टोंडु आरक्षित क्षेत्र और चप्रामारी वन्यजीव अभयारण्य तक फैलाव के कारण भारत सरकार ने 80 वर्ग कि.मि. क्षेत्र को मिलाकर सन् 1992 में इसको "राष्ट्रीय उद्यान" का दर्जा दिया। इस क्षेत्र की न्यूनतम उँचाई 130मीटर व अधिकतम उँचाई 150 मीटर हैं। यहाँ मुख्यतः तीन मौसम हैं – (नवम्बर से फरवरी तक), शीत/ग्रीष्म (मध्य मार्च से मई तक) तथा बरसात जो जून से मध्य सितम्बर तक रहती हैं। यहां औसत वर्षा 5650 मि. मि. हैं। वर्षा के समय हवा का रुख पूर्व या दक्षिण-पूर्व दिशा में होता है। इस क्षेत्र में न्यूनतम तापमान 15 सी व अधिकतम तापमान 32 सी तक चला जाता हैं।

वनस्पति विविधता की दृष्टि से उद्यान अति समृद्ध हैं। यहाँ पाये जाने वाले वनो को मुख्यतः चार

भागों में विभाजित किया गया हैं ; तराई घास का मैदान, शुष्क मिश्रित वन, नम मिश्रित वन और सेराल शाल वन। जलढाका, इंगडंग और मूर्ती नदी के बाढ़ प्रभा वेत क्षेत्रों में ऊँचे-ऊँचे तटवर्ती घास जैसी के सैकारम (Saccharum), फ्रैगमाइटिस (Phragmites), अरुन्डो-डोनाक्स(Arundo-donax), आलपीनीया (Alpinia), टाइफा (Typha) आदि प्रमुख हैं। इसके साथ अर्किड और अधिपादप पौधे पाये जाते हैं, जो बडे-बडे पेडों और उनकी शाखाओं के ऊपर बढ़ते हैं।

गोरूमारा राष्ट्रीय उद्यान में पाये जाने वाले वन आर्द्र पर्णपाती साल वन की श्रेणी में आते हैं, जो कि सिंधु - गंगा बंगाल मैदान जैव भोगोलिक क्षेत्र में हैं। डालवर्जिया सिस्सू (Dalbergia sisoo) आकासिया काटेचु (Acacia catach),सोरिया रोबुस्टा (Shorea robusta) डिल्लनिया इन्डिका (Dillenia Indica), डिल्लेनिया पेन्टागाइना (Dillenia pentagyna)सेड्रेला टूना (Cedrella toona),स्टरकुलिया विल्लोसा (Sterculia villosa), बोम्बाक्स मालाबरिकम (Bombax malabaricum) ग्रेविया वेस्टिटा (Grevia vestita), टरमिनालिया (Terminalia) आदि वृक्ष यहाँ पर ज्यादा पाये जाते हैं। इसके साथ ही अलबीजीया प्रसेरा (Albizzia Procera) अलबीजीया ओडोराटीसीमा (Albizzia odoratissima) रांडिया डयुमेटोरम (Randia dumetorum), ब्युटिया मोनोस्पर्मा (Butea monosperma) आदि वृक्ष भी देखे जा सकते हैं।

इस उद्यान के घास के मैदान फ्रेगमाइटीस-सौकारम-इम्पिरेटा (Phragmites-Saccharum-Imperata) प्रकार के हैं। शवाना में फ्रेगमाइटिस कार्का (Phragmites Karka)सैकारम प्रोसेरम (Saccharum procerum)सैकारम स्पोन्टानियम (Saccharum spontaneum),इम्पिरेटा सिलिन्ड्रोका (Imperata cylindrica) एरीयान्थेस एलीफान्टीनस (Erianthus elephantinus), आन्थीस्टाइरीया जाइगान्सीया (Anthistiria gigantia) अरुन्डिनेला डेसीम्पेडालीस (Arundinella Decempedalis) युलालीया फेस्टीजीयासस (Eulalia fastigiagces) साइम्बोपोगन नार्डस (Cymbopogon nardus) आदि के साथ विस्कोफीया जवानिका (Bischoffia javanica) साइजीजियम सेरासोइडिस (Syzigium cerasoides), ब्युटीया मोनोस्परमा (Butea monosperma), अल्बीजीया प्रोसेरा (Albizzia procera) इत्यादि पेड़ पाये जाते हैं। उद्यान की लगभग 20% भूमि नदीतटस्थ घास के मैदान और सवाना क्षेत्र द्वारा घिरी हैं, जो यहाँ पाये जाने वाले प्राणियों की चारण भूमि (चारागाह) हैं।

उद्यान की बाहरी परिधि के कुछ भागों में बस्तियाँ भी है। उनमें से तीन बस्तियाँ–बियभंगा बस्ती, सरस्वती बस्ती, और बाम्नी बस्ती उद्यान की परिधि के अन्दर स्थित हैं। यहाँ के निवासी उद्यानमें पाये जाने

वाले वृक्षों की अपने दैनिक उपयोग एवं अनेकों ओष.धेयों के रूपमें प्रयोग में लाते हैं। किन्तु वे उद्यान की वनस्पतियों को नष्ट नहीं करते, अपितु ऐसे उपयोगी पेड़-पौधों का रोपण करते हैं। वन विभाग के कर्मचारी भी उद्यान की वनस्पति को संरक्षित करने के लिये स्थानीय लोगों को शिक्षा तथा प्रोत्साहन देते हैं। औषध के रूप में इस्तेमाल होने वाली वनस्पतियों में से माइमोसा पुडिका (Mimosa pudica), आलोए वेरा (Aloe vera), राउलफीया सरपेन्टिना (Rauwolfia serpentina),डाइओस्कोरीया डेल्टोइडिया (Dioscorea deltoidea), ग्लोरिओसा सुपर्वा (Gyloriosa asperba), ल्युकस आस्पेरा (Leucas sapera),आस्पारागस रेसीमोसस (Asparagus racemoडेज), आट्रोपा बेल्लाडोना (Atropa belladona) बोम्बाक्स सैबा (Bombax ceiba), स्कोपारिया डलसीस (Scoparia dulcis) इत्यादि प्रमुख हैं। उद्यान के परिधि में चाय का एक बागान भी है।

उद्यान में बहुतायत पाये जाने वाले सैकारम स्पिसिज, अरूण्डो-डोनाक्स (Arundo-donax),फ्रेगमाइटिस कार्का (Phragmites karka), कोएक्स लाक्रीमाजोबी (Koex lachrymiazobi), सेटारिया स्पिसिज (Setaria sps,), आलपीनीया (Alpinia) आदि को चारा रूप में व्यवहार किया जाता हैं। उद्यान में पर्णांग प्रजातियाँ भी बडी संख्या में मिलती हैं जिनमें ड्राइनारिया क्वासिफोलिया (Drynaria quercifolia), लाइकोपोडियम हामिलटोनी (Lycopodium hamiltoni), पाइरोसिया फ्लोकुलोसा (Pyerosia floceulosa), लाइगोडियम एल्क्सुओसम (Lygodium Flucuccosum), टेरीस (Pteris) आदि मुख्य हैं। उींगअ में लान्टाना कामारा (Lantana camara), लिया स्पिसिस (Leea sps.) कासीआ टोरा (Cassia tora), कासीआ अलाटा (Cassia alata),मिकानीया स्पिसिज(Mikania sps.), युपाटोरियम स्पिसिज (Eupatorium sps.) कलेरोडेन्ड्रम बंगालेन्सीस (Clerodendrum benga-lensis) मुख्य हैं।

गोरुमारा राष्ट्रीय उद्यान के कुल क्षेत्र में वन एवं वनस्पतियों के भण्डार और उनमें पाई जाने वाली वनस्पति विविधता वहाँ की भौगोलिक एवं भौतिक स्थिति वन्य जीव-जन्तुओं के लिये एक आदर्श निवास प्रदान करता हैं। उद्यान में शाकाहारी प्राणियों में से लगभग 50 स्तनपायी प्रजातियाँ, 300 पक्षी प्रजातियाँ, 30 से भी ज्यादा, उभयचर प्राणी की प्रजातियां पाई जाती हैं। एक सींग वाला गेंडा (राइनोसेरस) और भारतीय गौर को संकटग्रस्त प्रजातियां में शामिल किया गया हैं, जो कि आजकल कम देखने को मिलता हैं। गोरुमारा, एकसिंग वाला राइनोसेरस का प्रागैतिहासिक निवासस्थल है। शाकाहारी जीवों में हिरन, चीतल, सांभर, चिंकारा, जंगली हाथी आदि प्रमुख हैं। वहाँ पर चार प्रकार के हिरन पाये जाते हैं–चीतल, शूकर हिरन, साम्भर, और गरजने वाला हिरन। शाम्भर जो कि एशिया में

पायेजाने वाले सबसे बड़ा हिरन हैं, जो वहाँ पर सवाना जंगलों या नदी के किनारे में घूमते हुए देखे जा सकते हैं। यहाँ पर ऐसे जीव-जन्तु भी हैं, जो अन्य जन्तुओं को मारकर खाते हैं, जिन्हें भक्षक श्रेणी में रखा जाता है, जैसे चीता, किंग कोब्रा, भेंड़िया, तेंदुआ आदि। अन्य जन्तुओं में जंगली बिल्ली, जंगली कुत्ता, चीता बिल्ली, मछली पकड़ने वाली बिल्ली, सवकी नजरोंवाली बिल्ली, आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा मालायम जांइट गिलहरी, ओट्टर, छोटा और बड़ा भारतीय सिव्रेट, भारतीय पांगोलीन, हिस्पीड हेयार, पाइथन, लंगुर, भारतीय प्रोकुपाइन और पिगमी-हग भी पाये जाते हैं।

गरूमारा राष्ट्रीय उद्यान में कई प्रकार के पक्षी भी पाये जाते हैं, जो कि जल में, घास में और लकड़ी में निवास करते हैं। उनमें से हरा कबूतर, हार्नविल, पाराकीटे, वुडपेकर, कोयल, ओरओलस, बाकार्स, प्रसेस, ड्रोंगोस आदि मूख्य हैं। शीतकाल में विसलिंग हिलस, ब्राह्मणी डक्स, गुजाण्डर, आदि यहाँ प्रवास करने आते हैं। वहाँ पर लगभग 10 प्रकाश के उलू पाये जाते हैं। शिकारी पक्षिओं में पाला का फिसिंग चील, वारीयौ काइट, बजाड़े, कैंसल, स्पारो हक आदि हैं। अन्य पक्षियों में डोवस, रोलर्स, हुप्पो, मैना, मुलबुल, फिन्वेस आदि है। उद्यान में राष्ट्रीय पक्षी मोर भी 30-40 की संख्या में देखो गये हैं। संकटग्रस्त पक्षियों में बंगाल फलोरीकान, काला पाट्रीज, साहीन फालकोन, ग्रेट पाएड़ हार्नविल, जंगली चील, जंगली उल्लू, ग्रेट ग्रीन बील्ड मालकोहा, पहाड़ी मैना और किंग वलचर प्रमुख है, जो सभी उद्यान में पाये जाते हैं।

उद्यान के जीव संम्पदा के संरक्षण में उद्यान प्रबंधन अधिकारियों का महत्वपूर्ण योगदान हैं। बिशेषकर शाकाहारी जीवों की संख्या में नियमित रूप से वृद्धि देखी गई हैं, जो प्रचुर मात्रा में वनस्पतियों के उपलव्ध होने के कारण ही सम्भव हो सका हैं।

जैव-विविधता के संरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने जिन क्षेत्रों को संरक्षित क्षेत्र का दर्जा दिया हैं, उसका मुख्य कारण हैं वनस्पति तथा प्राणी संम्पदा का अस्तित्व अक्षुण्ण रहे। संरक्षित क्षेत्र परितंत्र की समस्त वनस्पतियाँ और जीव-जन्तु हमारे भविष्य की धरोहर है, जिसका संरक्षण अनिवार्य हैं। गोरुमारा उद्यान औषधोपयोगी तथा आर्थिकोपयोगी वनस्पति जातियों का भंडार है। वहां पर पाये जाने वाले विरल व स्थानिक जातियों और संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक हैं।

'चन्दन – एक अमूल्य वनस्पति'

कु. रुपाली प्रशांत कुलकर्णी
पश्चिमी परिमण्डल, पुणे

हमारा भारत एक कृषिप्रधान देश है। यहाँ लगभग 18000 आवृतबीजी पेड़ पौधों की जातियाँ पाई जाती हैं।

इन जातियों में हजारों ऐसी हैं जिनका आर्थिक स्तर पर दोहन किया जा रहा है, अथवा किया जा सकता है, इन्ही में से एक महत्वपूर्ण वृक्ष है ''चन्दन'' (वैज्ञानिक नाम – सेन्टेलम अलबम लिन.) जो अपनी मनमोहक सुगन्ध के कारण अत्यंत लोकप्रिय है। कहा जाता है कि ''चन्दन'' हमारी सम्पदा न होकर विदेशी वनस्पति है जो इण्डोनेशिया से यहाँ आयी है। किन्तु ज्यादातर यह भारत के प्रायद्वीप क्षेत्र में ही मिलता है। चन्दन का उल्लेख वेद पुराणों व प्राचीन धार्मिक व साहित्यक रचनाओं जैसे महाभारत और रामायण आदि में भी किया गया है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि ''चन्दन'' भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म में कितना पुराना और महत्वपूर्ण स्थान रखता है जो शायद किसी अन्य वृक्ष को नहीं प्राप्त है। चन्दन निस्वार्थ भावसे हमेशा मनमोहक और शीतलता सुगंध बिखेरता है इसकां लेप भगवान और भक्त के मस्तक पर लगाते हैं। इसके बिना कोई भी पूजा अर्चना अपूर्ण है।

''चन्दन'' एक मध्यम ऊँचाई का सदाबहार वृक्ष है जो मुख्यतः भारतीय प्रायद्वीप के शुष्क स्थानों पर मिलता है। यह मैसूर, तमिलनाडु के अतिरिक्त राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उडीसा, मध्यप्रदेश में बहुत बड़े पैमानेपर लगाया गया है। मध्यप्रदेश में इसका संरक्षण भी हो रहा है जिसके फलस्वरूप सरकार ने मध्यप्रदेश को ''चन्दन सम्पदा'' का क्षेत्र घोषित कर दिया है। विश्वमें चन्दन की लगभग 27 (सताईस) प्रजातियाँ पायी जाती हैं। यह एक ऐसा आंशिक परजीवी पौधा है जो एक ओर अपनी पत्तियों से सूर्य के प्रकाश में अपना भोजन ग्रहण करता है तो वही दूसरी ओर अपनी जड़ों के माध्यम से दूसरे वृक्षों से भी भोजन प्राप्त करता है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में इसी गुण के कारण चन्दन का पौधा खेतों में अन्य झाड़ियों के साथ उगाया जाता है। ''चन्दन'' छोटी से मध्यम उचॉई तक का सदाबहार वृक्ष होता है। इसकी शाखाएँ ज्यादातर झुकी तथा इसकी छाल कत्थई काले रंगकी खुरदरी होती है जिसपर खड़ी दरारें दिखती है इसकी जड़े गहरी व कम फैलने वाली होती है। पत्तियाँ अण्डाकार, कम चौड़ी तथा 3 से 7 सेंमी लम्बी होती हैं। फूल छोटे काले रंग के होते हैं। चन्दन की लकड़ी दृढ़ और कड़ी होती है।

चन्दन वृक्ष की काष्ठ (हार्ड वुड) से ही सर्वाधिक कीमती "चन्दन तेल'' निकलता है इसी तेल

के कारण चन्दन की लकड़ी में सुगन्ध होती है और यह तौलकर विकने वाली सबसे महंगी काष्टों में एक है। चन्दन की लकड़ी बहुपयोगी है। इससे प्राप्त तेल से उच्च श्रेणी का इत्तर बनता है। चन्दन की लकड़ी से मूल्यवान कलात्मक वस्तुओं, घरेलू सजावटी सामान तथा खिलोने, पेन, आदि निर्माण किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा अर्चना आदि में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। हवन में चन्दन के लकड़ी का उपयोग किया जाता है। इससे अगरबत्तियां बनाई जाती हैं। दाह-संस्कार में भी चन्दन की लकड़ी का उपयोग किया जाता है। चन्दन के लकड़ी से मिलनेवाले तेल में औषधि गुण पाये जाते है। चन्दन का त्वचा रोगमें भी काफी उपयोग होता है। चन्दन के तेल से कई औषधियाँ बनायी जाती है । सिरदर्द में चन्दन में थोड़ा जल, कपूर घिसकर नाकमें (दो बूंद) डालने से कम होता है। चोट सूजन पर चन्दन का लेप काफी प्रभावकारी है। बुखार पर चन्दन की लकड़ी घिसकर प्राप्त लेप को माथे पर लगाने से रोगी को आराम होता है तथा आग की जलन में चन्दन गुलाब जल या सादापानी में घिसकर बनाया गया लेप पीड़ा कम करता है। यह घाव को भर जाने में भी मदद होती है। चन्दन का पेय शीतलता, स्फूर्ति शक्ति प्रदान करता है। इसके अलावा चन्दन का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियों तथा सुगन्धित साबुनो में बहुत बड़े स्तर पर किया जाता है। चन्दन मनमोहक, कीटनाशी होने के कारण पर्यावरण को भी स्वस्थ रहने में मदद करता है।

''चन्दन'' तमिलनाडू कर्नाटक के वनोमें भी अधिक पैमानेमें मिलते है। और यहाँ इस कीमती वृक्ष को काटना तथा चोरी भी काफी चर्चित है। उसको रोकने के लिये सरकार ने अच्छे कदम उठाये हैं। कटाई से पूर्व वृक्ष की लम्बाई और गोलाई का नाप लिया जाता है। अनेक राज्यों में भारत सरकार और राज्य विभाग द्वारा चन्दन का संरक्षण किया जा रहा है। इसकी महक और उपयोग के कारण शहरी क्षेत्रों के उद्यानों एवं प्रांगणो मे भी चन्दन के पेड़ लगाये जाते हैं।

सन 1879 में दक्षिण वनप्रभाग में चन्दन का वृक्षरोपण किया गया था। सौ वर्षो के बाद आज इस घनी चन्दन सम्पदा के संरक्षित क्षेत्र को ''चन्दन स्टेट'' घोषित किया गया है। इस चन्दन स्टेट को अभयारण्य का क्षेत्र माना जाता है।

भारतीय कृषि विज्ञान

नवीन चौधरी
मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारत में सभी ज्ञान-विज्ञान का अक्षय स्रोत वेदों को माना जाता है, खास तौर पर ऋग्वेद। बाद में आने वाले ऋषि मुनि और चिन्तक अपनी बातें पुराण, उपनिषद, संहिता, ब्राह्मण, श्रुति, स्मृति आदि ग्रंथों में रखते गए। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखा-प्रशाखा में उनके मन्तव्य कहीं अति विस्तृत तो कहीं अत्यन्त संक्षिप्त मिलते हैं। अति संक्षिप्त मंतव्य को "सूत्र" कहा गया है। जब स्थानीय भाषाओं का उदभव और विकास हुआ तो उन भाषाओं में भी ज्ञान-विज्ञान की बाते मौखिक अर्थात् लोक साहित्य के अंगके रूप में होने लगी।

भारतीय कृषि विज्ञान का उद्‌गमभी ऋग्वेद को माना जा सकता है। अमरकोश के रचनाकार ने भी कृषि विज्ञान पर उचित ध्यान दिया है। अन्य चिन्तकों में वराह मिहिर, रघुनन्दन आदि नाम उल्लेखनीय हैं। प्रसंगवश कृषि विज्ञान की चर्चा महाभारत, मनुस्मृति रघुवंश (कालिदास) आदि ग्रंथों में हुई है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में खना, घाघ, भड्डरी (भंडारी), डाक आदि के 'वचनों' में कृषि विज्ञानके महत्वपूर्ण तथ्यों की शृंखला बनी हुई है। हिन्दी के जाने माने कवि राम नरेश त्रिपाठी की रूचि इस दिशा में भी थी। उनकी पुस्तकों – "घाघ् और भंडारी" (1949) ग्राम साहित्य (1952) को लोग् पूरी तरह भूल गये हैं। कृषि विज्ञान की पुस्तकों में "कृषि पराशर" (ग्यारहवीं शताब्दी) का अनूठा स्थान हैं।

पराशर स्मृति में प्रसंगवश कृषि विज्ञान से सम्बन्धित लगभग एक दर्जन श्लोक हैं। कृषि पराशर के सभी 243 श्लोक कृषि विज्ञान से संबंधित हैं।

भारतीय कृषि विज्ञान ज्योतिष विज्ञान को साथ लेकर चलता है। कृषि पराशर का प्रथम अध्याय है 'राजानयनम्' अर्थात् वर्ष के राजा का निर्धारण। द्वितीय अध्याय: मेघानयनम अर्थात् मेघ का निर्धारण। तृतीय अध्याय जलाढक निर्णय अर्थात् जल के आढक का निर्धारण। आढक सौ योजन चौड़ा तीस योजन गहरा होता हैं। आठ अध्यायों में पौष से सावन तक आठ मास में वर्षा होने की संभावना (पूर्वानुमान) पर विमर्श है। अभी अभी वर्षा होगी इसके लिए निम्नलिखित संकेत हैं :

(क) पानी मे बुलबुला होना

(ख) चिटियाँ अपने अंडे लेकर बिलों से बाहर आने लगे या मेढक अचानक बोलने लगे

(ग) बिल्ली, नेवला साँप और बिल में रहने वाले जीव जन्तु उत्तेजित होकर भाग रहे हों

(घ) बच्चे रास्ते पर धूल (मिट्टी) के पुलबना रहे हों, मोर नाच रहे हों

(ड.) पुरुष के घाव या बात (गठिया) में अचानक दर्द बढ़ जाए; साँप पेड़ की सबसे ऊँची डाल पर चढ जाए

(च) जल पक्षी धूप में पंख सुखा रहे हों; झिंगुर की आवज सुनाइ दे

ज्योतिष विज्ञान का अनुसरण करते हुए ग्रह संचार से वृष्टिज्ञान का संकेत (पूर्वानुमान) दिया गया है। अनावृष्टि के लिए भी संकेत दिया गया है। कृषक के लिए अपेक्षित गुण हैं :

''गोहितः क्षेत्रगामी कालज्ञो बीजतत्परः

वितन्द्रः सर्वशष्याढ्यः कृषको नावसीदति॥''

गायों की देखभाल करने वाला, प्रतिदिन अपने खेतों में जानेवाला ऋतुओं का सम्यक ज्ञान रखने वाला, बीज का ध्यान रखने वाला और तन्द्रा (आलस्य रहित)।

अन्य अध्याय इस प्रकार है :

वाहन विधानम् – कृषि के लिए उपयुक्त मवेशी

गोपर्वकथनम् – गाय के पर्व

गोयात्राप्रवेशौ –

गोमयकूटोद्वार – गोबर का ढेर हटाना

हलसामग्री कथनम् – हल (कृषि) सामग्री विवरण

हल प्रसारणम् –

बीजस्थापनविधि – बीज संरक्षण

बीजवपन विधि – बीज बोने की विधि

मयिकादानम् – मयिका डालने की विधि

रोपनविधि –

धान्यकट्टन विधि

धान्यनिस्तृणीकरणम् – धान से खरपतवार अलग करना

भाद्रजलमोक्षणम् – भादो मे जल की निकासी

धान्यव्याधिखण्डनमन्त्र

जल रक्षणम्

मार्गे मुष्टिग्रहणम्

मार्गे मेधि रोपणम्

पौषे पुष्ययात्रा कथनम् (आज भी बंगाल में किसी न किसी रूप में होता है)

आढकलक्षणम्

धान्यस्थापनम् – धान रखना (भण्डारण)

कृषि पराशर में उल्लिखित अनेक मंतव्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में कहावत या लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हैं। आधुनिक कृषि विज्ञान के नित्य नये आविष्कारों के आने से प्राचीन भारतीय कृषि विज्ञान हमारी आँखों से दूर होता जा रहा हैं। उसकी उपयोगिता पर हमे सन्देह हो सकता है। फिर भी विरासत और घरोहर को सम्माल कर रखने के दायित्व से दूर हट जाना उचित नहीं होगा। विरासत के महत्व पर आज सारी दुनिया में चर्चा होने लगी है।

'पर्यावरण समाचार'

संजीव कुमार
मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. बोधिवृक्ष को देखने दुनिया भर से आने वाले तीर्थयात्री निराश होकर लोट रहे हैं। क्योंकि वृक्ष को चारो ओरसे से घेर दिया गया है। महात्मा बुद्ध को जहां ज्ञान की प्राप्ति हुई, वहां लोहे के मजबूत दरवाजे लगाकर ताला लगा दिया गया हैं। वर्तमान पेड़ मूल बोधि वृक्ष की चौथी संतति है। पेड़ सूक्ष्म कीटाणुओं से बुरी तरह संक्रमित है। इसके लिए इस पेड़ पर चढ़कर कीटनाशक का छिड़काव करना होगा। पेड़ के जड़ों के चीटियों ने खोखला कर दिया है। ये चीटियां वहां तीर्थयात्रियों द्वारा चढ़ाई गई मिठाई खाने के लिए जमा होती है। दूसरी समस्या पेड़ की जड़ के पास बड़ी संख्या में जलाई जाने वाली अगरबत्तियां ओर मोमबत्तियां है। इसके कारण पत्तियां ठीक से श्वास नही ले पाती।

2. इंडियन आँयल कार्पोरेशन और रेलवे ने वैकल्पिक ईंधन स्रोत तैयार करने के लिए रेल पटरियों के दोनो तरफ 'रतन जोत' के पौधे उगाने का समझोता किया है। इसे रेल मन्त्री ने 2003-04 के रेल बजट में पेश किया। 'रतन जोत' के पौधे से एक साधारण और कम खर्चीली शोधन प्रक्रिया से बायोडीजल निकाला जा सकता है जिसे रेल इंजनो में इस्तेमाल किए जाने वाले तेल में आसानी से मिलाया जा सकता हैं। इससे पर्यावरण की सुरक्षा तो होगी ही साथ में ईंधन व्यय में कमी आएगी।

3. मक्का ज्वार बाजरे एवम सोयाबीन बने बायोफ्यूल द्वारा प्रवासी भारतीय इंजीनियर सेम वर्मा. ने गरूड़ नामक विमान को उड़ाया। यह मंहगे आयातित ऑक्टेन फ्यूल से काफी सस्ता है।

4. विश्व भर में सारसों के एक मात्र प्राकृतिक प्रजनन स्थल सरसईनावर झील को अदालती हस्तक्षेप से मिले जीवनदान के बाद यहां एक बार फिर बड़ी तादात में पहुँचे पक्षियों की जमघट ने पर्यावरणविदों के चेहरे पर एक नयी मुस्कान बिखरे दी है। यह झील उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में यहां से करीब पैंतीस किलोमीटर दूर है। करीब 16771 एकड़ क्षेत्रफल में फैली झील में शीतकालीन प्रवास के लिये विभिन्न देशों के पक्षियों का जमघट प्रकृति प्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।यहां पहुँचने वाले पक्षियों में मासी हैरियर एवं सोर्द टोइटईगल जैसे पक्षी है जो छोटे पक्षियों का शिकार कर अपना भूख मिटाते है। विश्व बैंक की सहायता से भूमि सुधार विभाग की परियोजना के तहत झील का पानी निकाल दिया जा रहा था। इस कारण सारसों के एक मात्र प्राकृतिक प्रजनन स्थल को काफी नुकसान पहुँचा। आंकडो के मुताबिक दुनियाभर में सारसो की संख्या प्रायः आठ हजार है जिनमें पाँच हजार सारस केवल उत्तर प्रदेश में ही वास करते है।

इनमेंसे करीब तीन हजार सारस इटावा के नमभूमि में रहते है। स्मरण रहे उत्तर प्रदेश का राजकीय पक्षी 'सारस' घोषित किया गया है।

5. छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल सरगुजा जिले के लोगों की मलेरिया से होने वाली अकाल मृत्यु पर अंकुश लगाने वाले हकीम मोहम्मद काजिम द्वारा तैयार की गई मलेरिया की अचूक दवा 'अमृत काढ़ा काजमी' को राज्य सरकार अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पेटेंट कराने जा रही है। इस काढ़ा में जिन प्रामाणिक जड़ी-बूटियों का प्रयोग किया गया है उनमें मूख्य रूप से अमृता, हरजोड़, गूरूच, अदरक, भूनीम, भटकैया, जंगली जौ, इन्द्रजौ और कुटकी जैसे बूटी शामिल हैं।

6. औद्योगिकीकरण, वाहन प्रदूषण, व अन्य कारणों से कार्बनडाइक्साइड की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ रही है। मीथेन, नाईट्रस आक्साइड और क्लोरोफ्लोरो कार्बन प्रमुख रूप से ग्रीन हाउस गैसों के नामों से जानी जाती है। ये ग्रीनहाउस गैसें वायुमण्डल में एक एसा आवरण तैयार करती है जो सूर्य से आनेवाली गर्मी को वापिस नहीं जाने देती है और इसी वजह से धरती का तापमान बढ़ता जाता है। वायुमण्डल में इन गैसों की सांद्रता बढ़ने से पृथ्वी के तांपमान में भी वृद्धि हो रंही है। वायुमण्डल में मीथेन गैस की वृद्धि प्रति वर्ष एक प्रतिशत नाइट्रिस आक्साइड 0.25 प्रतिशत औण क्लेरोफोलोरो कार्बन 5 प्रतिशत आंकी गई है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण बाढ़, गर्महवा, एवं सूखी हवाओं का प्रकोप बढ़ गया है और ग्लेशियर भी तेजी से पिघलने लगते है।

7. पर्यावरण से जुड़े गैसरकारी संगठन सेंटर फार साइंस एण्ड एनवायरनमेन्ट ने मिनरल वॉटर की जांच करने पर पाया कि वे निर्धारित मानदण्डों पर खरे नही उतरते। दिल्ली में मिनरल वॉटर में कीटनाशकों की मात्रा पेयजल के मानक स्तर से 36.4 गुणा अधिक है। मिनरल वाटरों ब्रान्डों में डी-डी-टी लिडिन माल्थियोन और क्लोपादरिफोस जैसे आम कीटनाशक पाए गए।

8. कुल्लु-मनाली इलाके की चटटानों पर विज्ञापन से पर्यावरण को हुए नुकसान के लिए उच्चतम न्यायालय ने हिमाचल प्रदेश सरकार को दोषी माना है और उस पर एक करोड़ रूपए का जुर्माना किया है। अदालत ने पर्यावरण को हुई क्षति की भरपाई के लिए पांच करोड़ रूपए का एक कोष बनाने को कहा है। 140 चटटानों को रोगन से पोते गये विज्ञापनों के कारण हुए नुकसान को ठीक किया जाएगा।

9. केंकड़े के कवच से ऐसा टूथपेस्ट बनाया गया है जिस के इस्तेमाल से मुंह के संक्रमण से छुटकारा मिल सकता है ।

10. 600 सुन्दर झीलों से आबाद बंगलोर में शहरीकरण के चलते आज उनमेंसे ज्यादातर सूख चूकी है। 1961 में जिन 262 तालाबों की पहचान की गई थी उनमेंसे 181 तालाब सूख गये हैं। महज 34 तालाबों में आज जल है। जहां दुर्लभ जीव-जन्तु रहते थे, तालाब मछलियों से भरे होते थे वहां अब कंक्रीट के जंगल है। झीले घरेलू कचरा, औद्योगिक अपशिष्ट और खेतों से बहकर आनी वाली मिट्टी और कीटनाशकों का कचरा स्थल बन गई हैं।

11. पश्चिम बंगाल के मुख्य वन संरक्षण अधिकारी ने कहा है कि सुन्दरवन के खतरे में होने का सीधा असर कोलकाता पर पड़ेगा क्योंकि इस महानगर का अस्तित्व सुन्दरवन पर निर्भर है। इसलिए सुन्दरवन का संरक्षण आवश्यक है और स्थानीय लोगों की सहभागीता भी।

12. पर्यावरण दिवस के लिए इस वर्ष का मुख्य विषय 'जल संरक्षण' था। विश्व में लगभग 600 करोड़ की आबादी है। इसमेंसे प्रायः 200 करोड़ लोग जल न मिलने के कारण परेशान हैं। विश्व में शुद्ध जल मात्र 3 प्रतिशत व अशुद्ध जल 97 प्रतिशत है तो लोगों को शुद्ध जल मिलेगा?

13. एक रिपोर्ट के अनुसार आबादी के इस बढ़ते दौर में लगभग आधी धरती वीरान पड़ी है। ये वीरान इलाके समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों वाले हैं। विश्व कें इस 46 प्रतिशत वीरान क्षेत्र में मात्र 2.4 प्रतिशत लोग बसते है। ये वीरान क्षेत्र विश्व पर्यावरण पर व्यापक प्रभाव डालते है। ये क्षेत्र जलवायु और वर्षा को प्रभावित करते है। ये जैव-विविधता के भण्डार भी है। इन वीरान क्षेत्रों में सबसे बड़ा क्षेत्र बोराल बन है जो आर्कटिक, अलास्का, कनाडा, उत्तरी यूरोप और रूस के 1.6 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। भारत और बांगलादेश के लगभग 10,000 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला सुन्दरवन इन क्षेत्रों में सबसे छोटा है किन्तु सुन्दरवन ज्वारभाटा वाले क्षेत्र में बसा विश्व का सबसे बड़ा मैन्ग्रोव वन है।

वृक्ष-एक सच्चा जीवन साथी

मानस रंजन देवता
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

शहरी जीवन की संकीर्णता में हम
जब थके हारे बैठ गये,
वृक्ष ने नम्रऔर शान्त स्वभावसे,
हम पर अमृत सी छाया और फूल बरसाये।
चिन्ताग्रस्त भावना में डूबे हुये
वादिओं की तरफ जब देखे हम,
व्यस्त जीवन व मानसिक तनाव
बदले के बन गये तब शेत हिम।
जब शुद्ध वायु का करते
हम सब नित्य आहार,
धूल और प्रदूषण के कारण
होता है मन में प्रहार।
बहुधा रोग से ग्रसित होकर
जब ढूंढी हमने औषधी,
तब तब हम पाते है, पेड़ को,
एक जीवन-दायक साथी।
वन के विनाश का सिलसिला
कर रहा है हम सबको अपंग,
धीरे-धीरे बढ़ रहा है तेजी से,
लगता है, जैसे कट रहा है धरा का अंग।
वनस्पति का क्षय भर रहा है आज,
भय, हम सबके मन में,
इसकी इस गति के वजह से
बदल जाएगी ये धरा, शमशान में।
वृक्षों को काटने का समय
गया है कबसे निकल,
नये वृक्षों का रोपण करना है
अब हम सबको केवल।
सच्चे जीवन साथी की तरह
रहता है सदा हमारे संग,
जीवन की इस धूप में दी हैं
अपनी छाया हम सबको हर पल।
जीवन में मिली सुविधा का
लाभ उठाने हैं जिस तरह,
भबिष्य की धरोहर को आओ
हम सम्भाले अपने जीवन की तरह।

वृक्ष ही जीवन

लोपामुद्रा महान्ति
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

वृक्ष ही जीवन,
वृक्ष ही प्राण,
वृक्ष ही जीने का आधार,
वृक्ष के बिना तो कुछ भी नहीं
यह सारा संसार॥

वृक्ष ही माता,
वृक्ष ही पिता,
वृक्ष ही गुरु समान,
वृक्ष का रोपण कर हम
बढ़ाएँ उसका मान॥

वृक्ष ही काया,
वृक्ष ही छाया,
वृक्ष ही माँ के समान,
वृक्ष का आओ करें
हम सब सम्मान॥

वृक्ष को रोपित करें हम
एक अंकुर को पेड़ बनाएँ हम,
प्रकृति के गोद में झूम-झूमके
उसको फूलते-फलते देखें हम॥
देश की वनस्पति की रक्षा का
भार उठाएँ अपने कन्धों पर हम,
उसका संरक्षण संवर्धन कर
जगको एक नई दिशा दिखाएँ हम॥

वृक्ष है रक्षाकारी,
वृक्ष है उपकारी,
वृक्ष के गुण है अपार,
वृक्ष नहीं तो कुछ नहीं,
व्यर्थ है ये सारा संसार॥

ग्रेट निकोबार की आदिम जनजाति शोंपेन एवं उनका वानस्पतिक ज्ञान

मार्शल तिग्गा, पी. जी. दिवाकर एवं कु. जे. जयन्ती
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

अंडमान और निकोबार दीप समूह भारतीय मुख्य भूमि के कोरोमंडल तट से लगभग 1200 नाविक मील की दूरी पर, बंगाल की खाड़ी में 6 एवं 14 उत्तर तथा 92 एवं 94 पूर्व की भौगोलिक सीमाओं के बीच द्वीपों की माला के रूप में स्थित है। छोटे बड़े करीब 325 दीपों व उपद्वीपों से बना यह द्वीप पुंज 8290 वर्ग कि. मी. क्षेत्र में फैला हुआ है। अंडमान समूह में 300 तथा निकोबार समूह में 25 द्वीप व उपद्वीपों की लड़ी से बना अंडमान एवं निकोबार दीप पुंज धनुषाकार है। इस द्वीप पुंज के उत्तरी छोर में 732 मी. ऊँचा शिखर सैडल पीक उत्तरी अंडमान और दक्षिणी छोर पर स्थित 670 मी. ऊँचा शिखर माउंट थुलियर ग्रेट निकोबार के उच्चतम शिखर है।

भूमध्य रेखा के निकट होने के कारण यहाँ की जलवायु आमतौर पर गर्म तथा अधिक नम होती है। यहाँ का औसत तापमान 22-25^0 तक रहता है तथा औसत वार्षिक वृष्टि 300-380 सें. मी. होती है।

इस द्वीप समूह में छः जनजातियां वास करती हैं जिनमें जारवा, सेन्टीनली, ग्रेट अंडमानी और ओंगी नस्ल के आदिम जनजातियां नीग्रेटो वंशज के हैं जिन्हें प्राचीनतम समूह माना गया है, एवं निकोबारी एवं शोम्पेन आदिवासी मंगोल वंशी हैं जो प्रायः निकोबार द्वीप समूह में ही सीमित हैं।

जारवा : जारवा समुदाय, जिनकी जनसंख्या लगभग 300 है दक्षिण व मध्य अंडमान के पश्चिमी तटों तथा झिरकाटांग के जंगलों में निवास करते हैं। ये जंगलों के फल, कंद मूल और जीव जन्तुओं का शिकार कर अपना जीवन यापन करते हैं। शिकार और शहद संग्रह करने की इनकी प्रवृति हैं। किन्तु ये हिरण और पक्षियों का मांस नहीं खाते हैं। इनकी खुंखार एवं अमैत्रिक प्रवृति के कारण आज भी इन्हें सामाजिक जीवन शैली की जानकारी नहीं के बराबर है और इनका बाहर के लोगों तथा दुनियां से कोई संबंध नहीं है।

सेंन्टीनेली : अंडमान के उत्तरी सेंटीनेल द्वीप के पश्चिमी तट में निवास करने वाली यह आदिम जनजाति की संख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 50 है। ये प्रायः शिकार करके अपना जीवन यापन करते हैं तथा समुद्री सम्पदाओं पर निर्भर करते हैं। निग्रेटो वंशज की यह जनजाति में अन्य तीन निग्रेटो जातियों की जीवन शैली तथा सम्यता काफी निकट है। ये बाहरी लोगों से सदैव शंकित रहते हैं। वन तथा उनमें पाये जाने वाली उपयोगी वनस्पतियां इन जातियों को रोटी, कपडा, झोपड़ी, शिकार के अस्त्र, बीमारी से

जुझने हेतु औषधियां तथा मनोरंजन के लिए साधन उपलब्ध कराती हैं। ऐसी दशा में वनों का कटना या वनों में घुसपैठ आदि इनके जीवन-मरण का सवाल बन जाता है।

ओंगी : नीग्रेटो वंशज की यह आदिम जनजाति की संख्या 1981 के जनगणना के अनुसार 97 है। आदिकाल से ही ये इन्होंने अंडमान के डुवांग क्रीक नामक जगह को अपना निवास स्थान बनाया है। यहाँ के प्रशासन के अथक परिश्रम के फलस्वरूप आज ये आधुनिक जीवन शैली के आदी हो गए हैं।

ग्रेट अंडमानी : 1981 की जनगणना के अनुसार ग्रेट अंडमानी नीग्रेटो वंशज की संख्या 26 है। इस जनजाति को अंडमान एवं निकोबार प्रशासन ने 1968 में दक्षिण अंडमान के स्ट्रेट द्वीप में पुनर्स्थापित कर दिया।

निकोबारी : निकोबारी मंगोलियन वंशज के आदिवासी की अनुमानित संख्या 26,000 है। ये निकोबार समूह के 12 द्वीपों और लिटल अंडमान के एक द्वीप में निवास करते हैं। नारियल और सुपारी उत्पादन तथर सुअर पालना इनका प्रमुख धन्धा है। अतिरिक्त फसल को वे बाजार में बेच लेते हैं। ये लगातार बाहरी लोगों के संपर्क में रहते हैं जिसके फलस्वरूप कल्याण संबंधी योजनाओं एवं सुविधाओं का लाभ उठाते रहे हैं। ये औषधीय वनस्पतियों का सर्वाधिक ज्ञान रखते हैं।

शोम्पेन : 1981 की जनगणना के अनुसार मंगोलियन वंशज की इस आदिम जनजाति की संख्या 223 है। इस जाति के निवास स्थान ग्रेट निकोबार के चिंगन, 27 कि. मी. ईस्ट-वेस्ट रोड, डगमर तथा लाफुल हैं। इस जाति के लोग शर्मीले होते हैं। इनमें समूह में शिकार करने की प्रवृति है। प्रायः ये संग्रहित भोजन, मछली व सुअर के शिकार शहद तथा बागवानी पर आश्रित रहते हैं।

प्रस्तुत लेख में शोम्पेन जनजाति द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली कुछ मुख्य वनस्पतियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो हाल ही की पादप संग्रह दौरे के दौरान एकत्रित किए गए हैं।

तालिका – 1 औषधीय पौधे

	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	उपयोग
1.	अगला एनोमा निकोबारिका एच. के. एफ अरेसी	नेऊ	सिर दर्द से आराम पाने हेतु कपाल में पट्टी बांधते हैं।
2.	कलामस अंडामानिक्स कुर्ज अरेकेसी	नपुआ	तने का पानी, पीने औरशरीर पर लगाने से बदन का दर्द कम होता है।
3.	क्रोटोन अरजीरेटस ब्लूम यूफोर्बियेसी	–	बीज मसल कर थोडी मात्रा में खाने से पेट की गड़बड़ी दूर होती है।
4.	डोनाक्स कना एफोर्मिस फोरस्ट, एफ. के. स्कूम मरान्टेसी	निक. अमोक योआंग	जड़ का काढ़ा पीने पर बुखार उतर जाता है।
5.	गरसेनिया नरभोसा क्लूसियेसी	लतिगाई	छिलके का चूर्ण दर्द नाशक के रूप में उपयोग करते हैं।
6.	गरसेनिया प्रजाति क्लूसियेसी	गीगाक	छिलके के चूर्ण का सर्दी खांसी में सेवन करते हैं।
7.	ग्लोबा मरान्टिना लीन जिंजिबेरेसी	लाई / पुवाई	पत्ते आग में गर्म करके पेट सेंकने से पेट दर्द में आराम मिलता है।
8.	ग्लोकिडियन कालोकार्पम ब्लूम, यूफोर्बियेसी	निक. लुआइकाना	चर्म रोग में बीज व छिलके को मसल कर लगाने से आराम मिलता है।
9.	कोरथालसिया लसिनिओसा मार्ट. अरेकेसी	नपुआ	तने का पानी का सेवन सर्दी और खांसी से छुटकारा पाने हेतु करते हैं।

वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	उपयोग
10. लिया इण्डिका मेर. भिटे सी	लखाई/लखाज	पेंट दर्द से छुटकारा पाने हेतु पत्तियों का काढ़ा सेवन करते हैं।
11. निकोटिना टोबाकम लीन. सोलानेसी	चुखा	घाव से छुटकारा पाने हेतु सूखे पत्ती के चूर्ण में चूना और शहद मिलाकर मिश्रण को घाव में लगाते हैं।
12. ओफिओराइजा निकोबारिका बालाकर. रूबियेसी	—	ताजे पत्तियो का काढ़ा घाव में लगाने से घाव सूख जाता हैं।
13. टेरोस्पर्मम असेरिफोलियम वाइल्ड. स्टेर्कुलियेसी	कंगंग	छिलके का चूर्ण का सेवन सर्दी खांसी से छुटकारा पाने के लिए करते हैं।
14. स्पेथोग्रोटिस पिलकाटा ओर्किडेसी	फियहाउफियमु	मधुमकखी के डंक के दर्द से छुटकारा पाने के लिए इसके फूल का रस लगाते हैं।
15. थनबेर्जिया लवरिफोलिया अकान्थसी	लिन्डल फिनाइन/फियमु	मधुमक्खियों के डंक के दर्द से छुटकारा पाने के लिए डंक के स्थान पर फूल लगाते हैं।

तालिका–2 खाद्य उपयोगी पौधे

	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	उपयोग
1.	अमोमम फेंजली कुर्ज जिंजिबेरेसी	काई	बीज खाया जाता है।
2.	अरेका कटेचू लीन. अरेकेसी	नेमयाँ	बीज पान पत्ती के साथ खाते हैं।
3.	अरडिसिया सोलानासिक्या रोक्सब. मिर्सिनेसी	–	पका हुआ फल खाया जाता है।
4.	अरटोकर्पस चापलाशा रोक्सब. मोरेसी	-	फल का गुदा और पकाया हुआ बीज खाया जाता है।
5.	क्लोकेसिया स्कुलेंटा एल. स्कोट. अरेसी	लपुवाउ	डंठल और पत्ती पकाकर सब्जी के रूप में खाया जाता है।
6.	कोटेलिया प्रजाति जिंजिबेरेसी	तगुवाई	फल खाया जाता है।
7.	कोकास नुसिफेरा लीन. अरेकेसी	गाम	डाब का पानी तथा नारियल कच्चा खाया जाता हैं।
8.	डाओस्कोरिया भेक्सनस प्रेन एवं बर्क, डाआस्कोरियेसी	निक. लाई-लोंग	इसके कंद उबाल कर खाये जाते है।
9.	ड्रिनारिया क्वेर्सिफलिया जे. एस. एम. ड्रिनारियेसी	कोंगा	इसकी जड़ पान पत्ती के साथ खायी जाती है।

वैज्ञानिक नाम		स्थानीय नाम	उपयोग
10.	मोरिंडा सेट्रिफोलिया लीन. रूवियेसी	निक. लुरोंग	कोमल पत्ती सब्जी के रूप में और पके फल खाये जाते हैं।
11.	निकोशियाना टोबाकम लीन. सोलानेसी	चुखा	सुखे पत्ती को पान पत्ती और सुपारी के साथ खाया जाता है।
12.	नीपा फुटिकन्स वरम्व.अरेकेसी	लनसे वोलाटे	कच्चा फल पकाकर या कच्चा खाया जाता है।
13.	पण्डानस लेरम जोनस पण्डानेसी	बोंगाइमान/मुंकुंद	फल के गुदे को माल-पुआ जैसा तैयार कर प्रधान भोजन के रूप में खाया जाता है।
14.	पीपर बेटेल लीन. पीपरेसी	नैअउ	सुपारी के साथ पान पत्ती खाते हैं।
15.	रूबस मोलुंक्स लीन. रोसेसी	निक. वोकनूटो	फल खाते हैं।
16.	टका लेवंटोपेटालोइडस कुंटज, टकेसी	ऊबा	कच्चा कंद जहरीला है। अतः इसे अच्छी तरह से उवाल कर खाया जाता है।
17.	टरमिनेलिया कटाप्पा लीन. कोम्ब्रेटेसी	निक. तोहांगका	फल जला कर खाया जाता है।
18.	थेस्पेसिया पोपुलनिया सोलाएन्ड एक्स. कोरिया, मालभेसी	—	कोमल पत्तियाँ पकाकर या कच्चे खाये जाते हैं।

तालिका – 3, गृहनिर्माण उपयोगी पौधे

वैज्ञानिक नाम		स्थानीय नाम	उपयोग
1.	सउराउइजा ब्रेक्टिओसा डी. सी. सउराउइयेसी	–	इसका तना खम्मे के लिए, डालियाँ छत के बीम, कैंची और पत्ती बांधने के लिए बल्ली के रूप में उपयोगी हैं।
2.	कोकास नुसिफेरा लीन. अरेकेसी	गाम	इसकी पत्ती घर के छत बनाने के काम आती है।
3.	पंडानस प्रजाति पंडानेसी	मुंकुंग	घर की छत बनाने के काम आते हैं।
4.	कलामस प्रजाति अरेकेसी	–	घर बनाते समय बांधने के लिए तने को फाड़कर उपयोग में लाते हैं।

तालिका –4 , होड़ी निर्माण उपयोगी वृक्ष

वैज्ञानिक नाम		स्थानीय नाम	उपयोग
1.	अरटोकर्पस चपलाशा रोक्सब. मोरेसी	–	तने को खोदकर होड़ी बनाते हैं।
2.	अंथोसेफालसथैनेनसिस रिच.एक्स वाल्प. रूबियेसी	–	तने को खोदकर होड़ी बनाते हैं।
3.	कालोफइलम इनोफइलम क्लुसियेसी	लोमोंक	तने को खोदकर होड़ी बनाते हैं।
4.	कालोफइलम सोलाट्री बर्म एफ क्लुसियेसी	–	तने को खोदकर होड़ी बनाते हैं।
5.	स्टेर्कुलिया मैक्रोफइला भेंट. स्टेरकुलियेसी	–	तने को खोदकर होड़ी बनाते हैं।

वृक्षों के अन्य उपयोग

गठरी :– वैसे तो मनुष्य अपने खाद्य पदार्थो को किसी बर्तन से ढक कर रखते हैं। परन्तु शोंम्पेन जनजाति के लोग अपने खाद्य पदार्थो को युफोर्बियेसी कुल के मकरंगा इंडिका, मकरंगा निकोबारिका तथा मकरंगा पेलटाटा की पत्तियों से लपेट कर तथा रस्सियों से बांध गठरी के रूप में रखते हैं।

बर्तन :–मालपुआ बनाने के लिए केंवरा, उबालने के लिए डोंगी के आकार के बर्तन रूबियेसी कुल के अंथोसेफालस चैनेनसिस और आलमेसी कुल के ट्रेमा टोमेनटोसा वृक्षों के छिलकों से बनाते हैं।

प्रतिकारक :–अमोमम फेन्जली के डंठल, पत्ती व फूल के रस से शोंपेन आदिम जनजाति छत्ते से मधुमक्खियों को भगाते हैं। जंगलों में अक्सर जोंक पकड़ती हैं। जोंक भगाने के लिए वे खाया हुआ सुखा मुंह से निकालकर जोंक पकड़े स्थान पर रगड़ते हैं जिससे जोंक अपने आप गिर जाती हैं।

रिवाज :–संसार में कई जातियों में कान छेद करने की प्रथा आदिकाल से चली आ रही है। ग्रेट निकोबार के शोंपेन आदिम जनजाति में भी यह प्रथा युगों से चली आ रही हैं। अन्य जातियों में सिर्फ लड़कियाँ कान का फूल पहनने हेतु आल्पिन से कराती हैं। पर शोम्पेन नर-नारी दोनों ही कोपसिया अरबोरिया (अपोसैनेसी कुल) की डाली नोक कर कान में छेद करते हैं। और रक्त स्राव रोकने तथा व्यथा कम करने के लिए इसी पौधे के पत्तियों का रस लगाते हैं।

शोम्पेन औरतें संतान जनने के बाद अरडिसिया सोलानासिया (मिर्सिनेसी कुल) के जड़ों को पानी में उबाल कर गर्भाशय साफ करने के लिए पीती हैं। जड़ों का काढ़ा पेट से दूषित रक्त निकलने तथा रक्तवाहिनियों से रूधिर स्राव ठीक करने के लिए पीती हैं।

आज आवश्यकता है इन आदिम जनजातियों के वनस्पतिक ज्ञान को वैज्ञानिक दिशा प्रदान करना और इस प्रकार के आर्थिक महत्व के पेड़ पौधों की छान-बीन व संरक्षण में इनकी मदद ली जाये जिससे दुर्लभ व विलुप्त पादपों के संरक्षण में इनकी भागीदारी से द्वीपों का आर्थिक विकास और यहाँ की जैविक विविधता का संरक्षण किया जा सके।

आभार

जगजीत, सहायक आयुक्त, ग्रेट निकोबार के शोंपेन द्वारा उपयोगी वनस्पतियों की उपयोगिता संग्रह में सहयोग देने के लिए हम आभारी हैं।

संदर्भ

1. आवस्थी; ए. के. (1988) प्लान्ट यूज्ड एज फुड आइटमस बायद ट्राइबल्स आफ अण्डमान एण्ड निकोबार आइलैण्डस : ज. अंड. साइ. असो. 4 : 128 - 131

2. चक्रबर्ती, टी. एण्ड राव, एम. के. वी. (1989) एथनोबोटानिकल स्टडीज ऑफ द शोम्पेनस ऑफ ग्रेट निकोबार आइलैण्डस, जरनल ऑफ इकोनोमिक एण्ड टेक्सोनोमिक बोटानी 12 : 39 - 54.

3. डागर, जे. सी. एण्ड एन टी सिंह (1999) = प्लान्ट रिसोर्सेस ऑफ द अण्डमान एण्ड निकोबार आइलैण्डस.

4. पार्किन्सन, सी. ई. (1923) ए फोरेस्ट फ्लोरा ऑफद अण्डमान आइलैण्डस, शिमला.

5. राव, एम. के. वी. एण्ड चक्रवर्ती, टी. (1986) टू मोर प्लान्टस यूजड इन गेदरींग हनी, जनरल ऑफ इकोनोमिक एण्ड टैक्सोनोमिक बोटनी 7: 643 - 644.